हमारे प्रसिद्ध तीर्थस्थान

इलपावुलूरि पांडुरंगा राव

अनुवाद

पोलि विजयराघव रेड्डी

चित्रांकन

दीपक कुमार दास

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

विषय सूची

1. हमारा देश और हमारी संस्कृति

हमारा देश भारत है। इस देश में कई महापुरुषों ने जन्म लिया। कवि, गायक, कलाकार, पंडित, प्रवक्ता, प्रजापालक, विद्वान, वैज्ञानिक, योगी, त्यागी आदि उन्होंने जनता की भलाई के लिए अपनी प्रतिभा का इस्तेमाल किया और देश का गौरव बढ़ाया। किस युग में, कहां-कहां किस-किसने और कैसे-कैसे अच्छे काम किए, यह सब हमारे इतिहास से जान पड़ता है। हमारे देश के पुण्यक्षेत्र इसके साक्षी हैं। यहां के पर्वत, नदी, गांव, शहर, मंदिर, गुफाएं, इमारतें, बांध, विद्यालय, धार्मिक संस्थाएं आदि उन महापुरुषों के अच्छे कार्यों को दर्शाते हैं। उनकी तपस्या से देश ने जो प्रगति की, उसे देखकर यहां की नदियां कल-कल करती हैं। समुद्र ऊंची लहरों से उमड़ पड़ते हैं। पर्वत खुशी से देश की रक्षा करते हैं। इस सांस्कृतिक वैभव को केवल सुनकर संतुष्ट होना ही काफी नहीं, इसे जी भर देखकर समझना भी जरूरी है। इसीलिए तीर्थयात्राएं और पुण्यक्षेत्रों के संदर्शन करना हमारे राष्ट्रीय कार्यकलापों के अंग बन गए हैं।

भारतवर्ष संसार के बड़े-बड़े देशों में एक है। इतना ही नहीं आध्यात्मिक क्षेत्र में भी इस देश को एक खास स्थान प्राप्त है। वैदिक काल के ऋषियों के वाक्य आज भी हमें यहां सुनने को मिलते हैं। इस देश के ऋषियों ने पाप, पुण्य, त्याग, भोग और जीवन का परमार्थ आदि का मनन कर उसका सार इस संसार को भेंट किया है। मानव

की सेवा करना ही भगवान की सेवा करने के बराबर है, इस बात को उन्होंने समझाया। उन्होंने यह बताया कि हर एक प्राणी में यह शक्ति है कि वह अपने को समझे व सुधार सके। उसे पाने की साधना में धर्म, अर्थ, काम आदि कैसे सहायक होते हैं, उसका पता कर हमारे ऋषि-मुनियों ने मानव जीवन में समन्वय और समरसता लाने के तौर-तरीके भी समझाए। अपने स्वार्थ को त्याग कर, परहित में काम करते हुए अपने पड़ोसी का भी हित करना मानव-धर्म कहलाता है। इसी धार्मिक विश्वास को फैलाने में हमारे पुण्यक्षेत्र काम आ रहे हैं। उनका परमार्थ ही यह है। "तीर्थ" का अर्थ है तारनेवाला। स्वयं तर जाना और दूसरों को तरने देना ही मानव का कर्तव्य होना चाहिए। तभी हमारा देश कर्मभूमि व पुण्यभूमि कहलाएगा।

भारतीय जनजीवन में भावात्मक एकता बढ़ाने में भी तीर्थ-यात्राएं सहायक होती हैं। पूर्वकाल में जब यातायात के साधन नहीं थे, तब भी काशी से रामेश्वरम तक लोग पैदल ही रास्ता तय करते थे। आदि शंकराचार्य ने भी पैदल ही 'कालडी' से देश के कोने-कोने में जाकर अद्वैतवाद का प्रचार किया। गत शताब्दी में स्वामी विवेकानंद को भी आत्मज्ञान का साक्षात्कार तीन समुद्रों के संगम स्थल 'कन्याकुमारी' में ही हुआ। इस देश के सभी धर्मप्रवर्तकों ने तीर्थ-यात्राओं के द्वारा ही लोगों को परमार्थ का सबक सिखाया। निज जीवन में विविध भाषाएं बोलनेवाले लोग जाति, धर्म, भाषा आदि को भूलकर पुण्यक्षेत्रों के दर्शन में भारतीय संस्कृति को प्रत्यक्ष रूप में देखकर, उसे ग्रहण कर मिलजुलकर जीना सीख लेते हैं। भारतीयता क्या होती है, उनकी समझ में आ जाती है। आज के युग में जब यातायात के साधन इतने ज्यादा हो गए हैं कि लोग ऐसी यात्राएं

आसानी से कर सकते हैं। मगर श्रद्धा और भक्ति का होना भी अधिक जरूरी है। अगर इनके साथ-साथ आधुनिक सोच और एकता का भाव भी मिल जाए तो ये पवित्र तीर्थस्थल आधुनिक ज्ञान के मंदिरों में बदल जाएंगे।

2. काशी और रामेश्वरम

इसमें अतिशयोक्ति नहीं है कि हमारे देश के पुण्यक्षेत्रों में से काशी और रामेश्वरम सबसे अधिक महत्वपूर्ण माने जाते हैं। शायद इन दोनों के बीच जो संबंध है, यही उसका कारण हो सकता है। प्रत्येक यात्री जो काशी यात्रा पर जाता है, वह रामेश्वरम भी जाकर वहां काशी के गंगा जल से रामलिंगेश्वर भगवान का अभिषेक करके अपने को धन्य मानता है। दक्षिण भारत के आस्तिकों के लिए काशी यात्रा जितनी पवित्र है, उत्तर भारत के लोगों के लिए रामेश्वरम की यात्रा उतनी ही पवित्र मानी जाती है। कैलासवासी शंकर, काशी पर अपनी ममता के कारण विश्वनाथ के रूप में स्थापित हो जाते हैं तो शिवस्वरूप श्री रामचंद्रमूर्ति ने सेतुबंधन जहां हुआ था, उस संगमस्थल में रामलिंगेश्वर को प्रतिष्ठित कर उसके बगल में विश्वेश्वर को भी प्रतिष्ठित कर उसकी पूजा की। कहा जाता है कि यहां प्रतिष्ठित विश्वेश्वर को हनुमान कैलास से लाए थे। पूजा विधान में प्रथमतः विश्वेश्वरलिंगमूर्ति की पूजा होती है बाद में रामलिंगेश्वर स्वामी की। उत्तर एवं दक्षिण को सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक रूप में मिलाने वाले पुण्यक्षेत्र काशी और रामेश्वर हैं।

देवताओं के आवास के नाम से जाने जानेवाले हिमालय में शंकर की जटाओं से उतरकर गंगा भवानी भी शंकर की प्रिय काशी की ओर बहती हुई विश्वनाथ को दिखते ही वह अचानक उत्तर दिशा

की ओर मुड़ जाती है। वहां कैलास को तथा यहां काशी को शीतल नयनों से देखनेवाली रसमयी भगीरथी का यहां उत्तर की दिशा में बहना एक विलक्षण बात है। यह देखकर वरण और असि नामक दो उपनदियां भी गंगा में मिल जाती हैं। इससे वह वारणसी या वाराणसी बन जाती है। उसी स्थल को बाद में उस नाम से जाना जाने लगा। काशी, वाराणसी, दोनों नाम प्राचीन काल से प्रचलित हैं, किंतु काशी नाम में जो आत्मीयता है, वह किसी और नाम में नहीं मिलती। प्रकाशित होनेवाली काशी है, प्रकाशित करानेवाली भी काशी है। काशी नगर हजारों वर्षों से स्वयं प्रकाशित होकर दूसरों को प्रकाशित करता आ रहा है। उसकी यह सेवा ज्योतिर्मय सेवा कहलाती है। इसीलिए बारह ज्योतिर्लिंगों में काशी और रामेश्वर को प्रमुख स्थान प्राप्त है।

काशीपट्टण संसार के नगरों में अत्यंत प्राचीन नगर है। आज भी यह नगर नवीनता को लिए सजीव, आनंद नंदनवन की तरह कायम है। भीड़ से भरी हुई गलियों में दूर-दूर से आए हुए यात्रीगण कदम-कदम पर संदेह से आगे बढ़ते हैं कि क्या यही विश्वेश्वर का मंदिर है। उन्हीं गलियों में अन्नपूर्णेश्वरी का मंदिर दिखते ही अपने संदेह को दूर कर "हां, यही भूमि पर अवतरित कैलास है" मानकर संतुष्ट होते हैं। बालगोपाल के द्वारा जपे जानेवाली तीन देवियां—कंची-कामाक्षी, मधुर-मीनाक्षी एवं काशी-विशालाक्षी में से काशी-विशालाक्षी को इस छोटे से स्थान पर दुबक कर बैठी देखकर, ऐसा लगता है कि मानो सारे विश्व को विश्वेश्वर के लिए छोड़कर वह इस छोटी जगह पर बैठ गयी है। 'अठारह पीठों' में विशालाक्षी मंदिर एक है। मंदिर के सामने ही साक्षी विनायक, सूर्यनारायण, भैरवस्वामी, हनुमान आदि दिखाई पड़ते हैं। इस कोने में स्थित

विश्वनाथ मंदिर देश के कोने-कोने से लोगों को आकर्षित करता है। सन् 1670 में प्राचीन मंदिर के टूट जाने से इंदौर की महारानी अहल्याबाई ने 1776 में स्वामी की पुनः प्रतिष्ठा कर मंदिर का पुनः निर्माण कराया। कहा जाता है कि स्वामी ने महारानी के स्वप्न में आकर मंदिर की 'मरम्मत' कराने को कहा। आखिर विश्वनाथ मंदिर काशी विश्वेश्वर का स्थायी निवास बन गया। हजारों वर्षों से गंगा तट पर स्वामी बसे हुए हैं। कहा जाता है कि मूल विराट विश्वनाथ मंदिर के अलावा काशी में कम से कम दो हजार मंदिर हैं। इनमें कई मंदिर काफी प्राचीन हैं। इस शताब्दी में वहां कई नए मंदिर ही नहीं, विश्वविख्यात विश्वविद्यालय भी स्थापित हुए हैं। महर्षि समान मदनमोहन मालवीय ने इसी शताब्दी में यहां काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना की। इस संस्था को संस्कृत भाषा के विकास तथा प्राच्य विद्या के पोषण का कला-मंदिर कहा जा सकता है। इसमें 'भारत कला भवन' मुख्य रूप से देखने लायक है। बिड़ला परिवार द्वारा स्थापित विश्वनाथ मंदिर भी इसी विश्वविद्यालय के परिसर में स्थित है। दुर्गालय, तुलसी मानस मंदिर, ज्ञानवापी, आदिकेशव, बिंदुमाधव आदि मंदिर यहां के देखने योग्य दिव्यक्षेत्र हैं।

गंगास्नान काशी यात्रा का प्रधान कार्य है। अर्धचंद्राकार उत्तर वाहिणी की तरह बहती गंगा नदी के तट पर स्नान करने के लिए लगभग 64 तट बने हैं। इन्हें घाट कहते हैं। इनमें मुख्य हैं दशाश्वमेध घाट, मणिकर्णिका घाट, हरिश्चंद्र घाट, पंचगंगा घाट, असीघाट। इन पांचों घाटों में नहाकर काशीपुरी के प्रदक्षण करने की परंपरा चली आ रही है। ऐसा भी लोगों का विश्वास है कि जो व्यक्ति काशी में प्राण त्यागता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। इसीलिए कई बूढ़े

लोग अपने बुढ़ापे के दिन यहीं बिताकर प्राण त्यागने के लिए आते हैं। कहीं और मरे लोगों के मृत देहों का दहन भी यहां किया जाता है। हरिश्चंद्र घाट इस कार्य के लिए मशहूर है। पुराणों के अनुसार सत्य वाक्य के पालन के लिए हरिश्चंद्र ने इसी तट पर श्मशान की देखरेख का कार्य किया था। इसी प्रकार हर एक घाट की अपनी अलग पुण्यगाथा है। वास्तव में कहा जाए तो काशी ही पुण्यगाथाओं की केंद्रस्थली हैं।

गौतमबुद्ध, चीनी यात्री ह्यूनसांग, शंकर, रामानुजाचार्य, गीतगोविंदकर्ता जयदेव, चैतन्य महाप्रभु, गोस्वामी तुलसीदास आदि कई महापुरुषों ने इस पुण्यस्थल के दर्शन किए थे।

काशी केवल हिंदुओं का ही पुण्य स्थल नहीं है। बोधिवृक्ष के नीचे बैठकर तपस्या कर संपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने वाले गौतम बुद्ध पदयात्रा द्वारा काशी से 10 किलोमीटर की दूरी पर स्थित सारनाथ तक पहुंचे थे। वहीं उन्होंने अपने ज्ञान का प्रचार किया। फाहियान और ह्यूनयान ने इस स्थान के दर्शन कर इसके बारे में अपनी रचनाओं में इसकी प्रशंसा की है। कितने ही विदेशी आक्रमण क्यों न हुए हों, काशी की तरह सारनाथ ने भी अपने आध्यात्मिक तेज की रक्षा निरंतर की है। अशोक द्वारा निर्मित 70 फुट का स्तूप यहीं पर है। इस स्तूप के अशोक चक्र ने ही हमारे देश के राष्ट्रीय झंडे में स्थान प्राप्त किया है। ढाई हजार साल पहले के यहां के स्तूप चक्र, स्तंभ, मंदिर आदि बौद्ध धर्म के द्वारा प्रवर्तित परम सत्य को दर्शाते हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो काशी सर्व धर्म समन्वय की नींव रखनेवाली पुण्यभूमि है।

रामेश्वरम

उत्तर भारतवर्ष के लिए काशी जितना प्रमुख है दक्षिण भारतवर्ष के लिए रामेश्वरम वैसे ही प्रमुख है। अयोध्या में अवतरित श्री रामचंद्र का दक्षिण समुद्र तट पर जाकर कैलासवासी को वहां लिंगमूर्ति के रूप में प्रतिष्ठित करना इस क्षेत्र की महिमा को दर्शाता है। करोड़ नदियां और तीन समुद्र मिलकर कैवल्य (विषयवासना हीनता) का गान करने वाला यह पुण्यक्षेत्र भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक चैतन्य के लिए प्राकृतिक संगमस्थल है। हमारे देश के चार प्रसिद्ध पीठों में रामेश्वरम को प्रथम माना जाता है। दूसरा द्वारका, तीसरा पुरी और चौथा बद्रीनाथ है। बारह ज्योतिर्लिंगों में

चित्र : रामेश्वरम का मंदिर

भी रामेश्वरम की रामलिंगेश्वर मूर्ति प्रधान मानी जाती है।

समुद्र के बीचों-बीच द्वीपाकार में स्थापित रामनाथपुरम देखने में छोटा-सा गांव होते हुए भी आसपास के मंदिर का वैभव, प्राकृतिक सौंदर्य देखने पर यात्रियों को ऐसा लगता है, मानो वे रामायणकाल में सीता, राम, हनुमान के साथ अपना समय बिता रहे हैं। सीता देवी के द्वारा बालू से निर्मित शिवलिंग को राम से प्रतिष्ठित करवाने का प्रयत्न कर रहे हनुमान की मूर्ति देखने लायक है। प्राचीन गाथा सच हो न हो, रामलिंगेश्वर मंदिर के प्रवेश द्वार के पास दिखाई देने वाले हनुमान की यह आकृति सबके हृदय को आकर्षित किए बिना नहीं रहती। स्वामी दर्शन के पहले यात्री मंदिर में स्थित 22 तीर्थों में स्नान करते हैं। कहा जाता है कि इस पानी में कई प्रकार की जड़ी-बूटियां मिली होती है। मंदिर के बाहर 21 तीर्थ हैं। राम के पद स्पर्श से यह क्षेत्र पूरा परम पवित्र लगता है। मंदिर में स्पटिकलिंग को छूकर पूजा करने का अधिकार सबको नहीं मिलने पर भी स्वामी का अभिषेक देखना ही काफी आनंददायक होता है। मंदिर के परिसर में कोदंडरामस्वामी, माता पर्वतवर्धिनी, गंधमादन पर्वत, दर्भशयन, आदि जगन्नाथ मंदिर, देवी पट्नम देखने लायक स्थान हैं। कोदंडस्वामी मंदिर के पास ही वह स्थान है जहां विभीषण श्रीराम की शरण में आया था। कहा जाता है कि गंधमादन पर्वत पर खड़े होकर श्रीराम ने लंका को देखा था। हनुमान ने भी इसी पर्वत से समुद्र को पार किया था। सेतु बांधने से पहले श्री रामचंद्र ने समुद्र को वश में करने के लिए प्रतिज्ञा करके जहां सोए थे, वही स्थल दर्भशयन कहलाता है। देवीपट्नम में नवग्रहों का अनुग्रह पाने के लिए रामचंद्र ने समुद्र के बीचों-बीच नौ पत्थर के स्तंभों की स्थापना की थी। ये ही नवपाषण के नाम से जाने जाते हैं।

दर्भशयन की बगल में ही आदिशेष पर शयन करते हुए विष्णु भगवान की मूर्ति मनोहर लगती है। इसी को आदि जगन्नाथ मंदिर कहा जाता है। सबसे बढ़कर दिव्यक्षेत्र धनुष्कोटि है। यह रामेश्वरम से 20 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहीं पर बंगाल की खाड़ी तथा दक्षिण का समुद्र मिलते हैं। त्यागराज ने अपनी कृतियों में इस क्षेत्र की महिमा का गान करते हुए कहा है कि करोड़ नदियां धनुष्कोटि में मिली हुई हैं।

३. गंगा और प्रयाग

गंगा स्नान तथा गया में श्राद्ध; ये हिंदुओं के कर्मकांड में प्रमुख माने गए हैं। गंगा स्नान के लिए गए हुए भक्त काशी जाकर विष्णुपाद में पिंड प्रदान जरूर करते हैं। समय के साथ-साथ ये दोनों क्षेत्र (काशी और गया) बौद्ध धर्मावलंबियों के भी पवित्र तीर्थस्थल बन गए हैं। काशी के समीप सारनाथ तथा गया के समीप बुद्ध (बोध) गया संसार के सभी बौद्ध धर्मावलंबियों द्वारा दर्शन करने वाले पुण्यक्षेत्र हैं। इनके अतिरिक्त बुद्ध भगवान का जन्मस्थान लुम्बिनी (नेपाल) निर्वाण की प्राप्ति का स्थल कुशिनगर (गोरखपुर) भी बौद्ध धर्म के लोगों के पुण्यक्षेत्र हैं। बुद्धावतार श्री विष्णु भगवान के अवतारों में एक है। इसलिए यह क्षेत्र हिंदुओं का भी पुण्यक्षेत्र है। कहा जाता है कि गौतमबुद्ध ने सिद्धार्थ की अवस्था में ही अक्षयवट के नीचे अपनी तपस्या आरंभ कर इसे अपनी तपस्या का स्थान बना लिया। कुछ भी कहो, काशी एवं गया—दोनों हिंदू और बौद्ध दोनों धर्मावलंबियों के लिए समान रूप से पुण्यक्षेत्र हैं।

मुख्य रूप से पितृकर्म के लिए विख्यात होने पर भी गया की चर्चा अग्नि, गरुड़, वायु पुराणों में विस्तार से देखने को मिलती है। त्रिपुरासुर का बेटा गयासुर इस क्षेत्र का मूल पुरुष कहलाता है। वह विष्णु भगवान का कट्टर भक्त था। उसे देखने मात्र से लोगों को मृत्यु के बाद स्वर्ग की प्राप्ति होती थी। उसकी महिमा को देख देवता भी ईर्ष्या से जल उठते थे। अंत में इन्हीं के कारण गयासुर

को भूगर्भ में चिरनिवास करना पड़ा। विष्णु भगवान ने उसे वर दिया कि अगर किसी ने तुम्हारा बदन भी छू लिया तो उसे स्वर्ग प्राप्त होगा। आज भी गया में फल्गु नदी के तीर में शयन मुद्रा में गयासुर देखे जा सकते हैं। उस नदी तट पर ही विष्णुपाद भी है। अक्षयवट भी वहीं स्थित है। फल्गु नदी ज्यादातर सूखी ही रहती है। मगर थोड़ी ही दूर पर पानी निकलता रहता है। कहा जाता है कि उस नदी में स्नान करके अक्षयवट के नीचे पूर्वजों को पिंड प्रदान करने से उनका उद्धार होता है। शास्त्रों का कहना है कि अगर गया में एक बार श्राद्ध देते हैं तो बाद में श्राद्ध देने की जरूरत नहीं रहती। आज भी भक्त कहीं भी श्राद्ध क्यों न दें, वे यही कहते है–"गयायाम दत्तामस्तू" (यह गया में दिया गया समझिए)। हिंदुओं के अनुसार गंगातट पर दहन और गया में पिंड प्रदान करना पवित्र काम है। काशी की तरह गया में भी अपनी पसंद की वस्तु का विसर्जन करने का रिवाज है। त्याग की बुद्धि को अपनाने में यह सहायक होता है।

विष्णु के पैरों के निशान से मुद्रित यह मंदिर भव्य मंदिर है। मंदिर में सोने के पलंग पर सोए हुए विष्णु भगवान का चित्र प्राचीन कलाखंडों का कमनीय दृश्य है। विष्णुपादालय से थोड़ी दूर पर ब्रह्मयोनि तथा मातृयोनि नामक दो पर्वत-गुफाएं हैं। कहा जाता है कि उन गुफाओं में जाकर आने से जीवन और मृत्यु के चक्र से विमुक्ति प्राप्त होती है।

यह इतनी महिमावाला क्षेत्र होने के कारण ही गौतम बुद्ध ने यहां बुद्ध भगवान का रूप धारण कर परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त किया और संसार में भी उस ज्ञान को बांटा। इस महापुरुष को ज्ञानोदय कराने वाला पीपल का पेड़ बोधबृक्ष के नाम से जाना जाने लगा। यहीं

पर महाबोधि मंदिर की स्थापना हुई। संसार के बौद्ध धर्मावलंबियों का यह यात्रा स्थल बन गया। इस मंदिर में बुद्ध की मूर्ति के साथ शिवलिंग का होना भी विशेष बात है। इस बोधिवृक्ष का अंकुर श्रीलंका तक पहुंचकर वहां अशोक चक्रवर्ती की बेटी संघमित्रा को स्फूर्ति प्रदान की। यह वही स्थान है जो अनुराधापुरम कहलाता है।

महाबोधि मंदिर का हर एक चप्पा और कण भगवान बुद्ध की सिद्धि-साधना का गान करता है। जहां वे बैठे थे, वह स्थान वज्रासन बन गया। जहां उन्होंने ध्यानमग्न होकर जिस स्थान पर अपनी दृष्टि केंद्रित की वहां "अनिमेषलोचन स्तूप" स्थापित हो गया। जहां वे ध्यान मुद्रा में घूमे वह भूमि "चक्रमणिचैत्य" बन गया। जहां पर आत्मज्योति को प्रकाशित किया वह स्थान "रत्नगर्भ चैत्य" बन गया। ऐसे पुण्यक्षेत्र में आकर आज भी लाखों लोग निष्ठा से प्रदक्षणा करते हैं तो इसमें कोई अचरज की बात नहीं।

एक ओर हिंदुओं का और दूसरी ओर बौद्धों का आराध्य-स्थल; यह गया नगरी सचमुच बुद्धि और सिद्धि के लिए प्रसिद्ध है।

प्रयाग

गंगा, यमुना और सरस्वती, इन तीनों नदियों का संगम ही प्रयाग क्षेत्र कहलाता है। इसी को त्रिवेणी संगम या त्रिवेणी कहा जाता है। यहां गंगा, यमुना का संगम स्पष्ट दिखाई देता है मगर सरस्वती कहां से कैसे आकर मिलती है, यह हमारे चर्म चक्षु (बाह्य आंख) पहचान नहीं पाते। वह अंतर्यामी है। इसलिए केवल अंतःचक्षुओं (आंतरिक आंख) को ही दिखती है। हमें यह दिखती नहीं तो यह कहने का अधिकार हमें नहीं है कि यह नहीं है। इसलिए, वह है समझकर संतुष्ट होना ही अच्छा है। दोपहर के वक्त सूर्य की किरणें,

रसत्रयी के मिलन स्थल इस संगम को कांतिमय करने पर वह केवल जल प्रवाह ही नहीं, कांति किरणों का संभाषण सा लगता है। ऐसा लगता है मानो सृष्टिकर्ता के महायोग के परिणामस्वरूप यह वसुमति राग अलाप रही हो। सच कहा जाए तो प्रयाग योग भूमि है। प्रजापति द्वारा किए गए 'प्रकृष्ट यज्ञ' के फलस्वरूप ही इस पुण्यभूमि का नाम "प्रयाग" पड़ा। इसीलिए इस क्षेत्र को "तीर्थराज" भी कहते हैं।

त्रिवेणी संगम में स्नान करना ही प्रयाग यात्रा का प्रधान कार्यक्रम है। स्नान किसी भी दिन कर सकते हैं, किंतु कहा जाता है कि माघ मास में स्नान करना प्रयाग के माधव स्वामीजी को पसंद है। इतना ही नहीं बारह वर्ष में एक बार यहां "कुंभ मेला" लगता है। यही उत्सव हरिद्वार, उज्जैन और नासिक में भी संपन्न होता है। मगर प्रयाग में होनेवाला कुंभ मेला ही सबसे प्रसिद्ध माना जाता है। इसके लिए लाखों लोग यहां आते हैं। योगीजन, बाबा, पंडित, भक्त, सामान्य जनता केवल संगम में स्नान करने के लिए ही इतनी दूर आते हैं। देश के सभी तीर्थों में सबसे पवित्र तीर्थस्थल होने के कारण से भी इसे तीर्थराज कहा जाता है। नदी तट पर थोड़े छोटे-छोटे मंदिर भी हैं। उनमें भरद्वाज आश्रम, काशी मंदिर, हनुमान मंदिर मुख्य हैं।

नदी तट पर संगम स्थल के पास ही स्थित हनुमान मंदिर में हनुमान की मूर्ति विश्राम की मुद्रा में नजर आती है। इस मुद्रा में हनुमान और कहीं नजर नहीं आते। जब बाढ़ आती है, तब नदी का जल हनुमान के चरणों तक आकर लौट जाता है। कहा जाता है कि यहां के हनुमान में अपार महिमा है। सभी धर्मावलंबियों के लिए यहां प्रवेश खुला है।

प्रयाग में भरद्वाजाश्रम की अधिक प्रधानता होने पर भी भरद्वाज महर्षि की भूमिका रामायण में तो प्रमुख है। श्रीरामचंद्र वनवास जाते समय तथा वनवास पूरा करके वापस अयोध्या लौटते वक्त इस महर्षि के आश्रम में थोड़ा समय बिताते हैं। इसी तरह भरत भी चित्रकूट जाते वक्त तथा लौटते वक्त यहीं विश्राम करते हैं। महर्षि श्रीराम से प्रार्थना करते हैं कि वे वनवास का सारा समय यहीं बिताएं। जब श्रीराम विनम्र होकर कहते है कि यह संभव नहीं है, तब महर्षि सुझाव देते हैं कि चित्रकूट वनवास के लिए सही स्थान रहेगा। उस संदर्भ में चित्रकूट का विवरण करते हुए महर्षि जो बातें बताते है उससे चित्रकूट की विशेषता का पता चलता है।

चित्रकूट आज भी उतना ही विशिष्ट स्थान रखता है। प्रयाग से 30 किलोमीटर की दूरी पर स्थित चित्रकूट में ही राम और भरत का मिलन हुआ है। यहीं पर भरत ने राम को अयोध्या राज्य को स्वीकारने की विनती की। आखिर राम की पादुकाओं से ही संतुष्ट होकर नंदिग्राम वापस चले गए। मंदाकिनी नदी वह नदी है जिसमें जानकी देवी ने स्नान किया था। स्फटिक शिला पर आज भी राम के पावों के निशान देखने को मिलते हैं। चित्रकूट सीताराम का पुण्य निवास स्थल है।

4. अयोध्या और मथुरा

अयोध्या श्रीरामचंद्र की जन्मभूमि है, तो श्रीकृष्ण का जन्मस्थल मथुरा है। ये दोनों पुण्यक्षेत्र भारतवासियों के लिए ही नहीं, विदेशियों के लिए भी दर्शनीय स्थल हैं। अयोध्या सरयू तट पर बसा है तो मथुरा यमुना तट पर। श्रीरामनवमी तथा श्रीकृष्ण जन्माष्टमी इन दोनों क्षेत्रों में आज भी वैभव के साथ मनाई जाती है। आजकल घटी राजनीतिक घटनाओं के कारण अयोध्या में प्राचीन वैभव कुछ कम होने के बावजूद सीता, राम-लक्ष्मण की दिव्यता (दैवत्व) को दर्शाने वाले स्थान आज भी उसी तरह कायम हैं। हनुमान गढ़ी, कनक भवन, लक्ष्मण घाट, वशिष्ट कुंड, भरत कुंड आदि स्थान देखने लायक हैं। वाल्मीकि मंदिर भी देखने लायक स्थान है। वाल्मीकि रामायण के 24000 श्लोक इस मंदिर की दीवारों पर गढ़े हुए हैं। लोगों के उपयोगार्थ इसे अंतर्राष्ट्रीय रामायण संस्था की तरह विकसित किया जा सकता है। रामायण भारत देश के लिए ज्ञानपीठ के समान है। अयोध्या द्वारा मानवजाति को किया गया बड़ा उपकार यही रामायण महाकाव्य रसायन है।

श्रीकृष्ण की जन्मभूमि मथुरा, लीलाक्षेत्र गोकुल और वृंदावन आदि स्थानों का रख-रखाव इस तरह किया जा रहा है कि वे आज भी विगत समय के वैभव को यथावत रूप में दर्शाते हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी इस क्षेत्र ने अपना नाम रोशन किया है। राजाओं के बदलने पर भी और जमाने के बदल जाने पर भी "हरे राम, हरे

राम, राम राम, हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे,” का दिव्य नाम-संकीर्तन इन दोनों क्षेत्रों को चिरस्मरणीय बनाए रखने में समर्थ है।

श्रीकृष्ण जन्मस्थान, मथुरा में मुख्य रूप से देखने लायक मंदिर केशवस्वामी मंदिर है। इसमें राधा केशव की मूर्तियां प्रधान हैं। जब दाईं ओर से मंदिर में प्रवेश करते हैं तो जगन्नाथ, बलराम, और सुभद्रा को चैतन्य महाप्रभु दर्शन करते हुए नजर आते हैं। बाईं ओर सीता, राम और लक्ष्मण के साथ हनुमान भी दर्शन देते हैं। सामने श्रीकेशवेश्वर स्वामी और दुर्गा भी नजर आती हैं।

मथुरा, वृंदावन, गोकुल तीनों को मिलाकर ब्रजभूमि कहते है। यहां ऐसे कई स्थान हैं जो श्रीकृष्ण की लीलाओं की याद दिलाते हैं। कई लोग गोवर्धन पर्वत के दर्शन करते हैं। कंस का संहार कर श्रीकृष्ण ने जहां विश्राम किया था, उस स्थान पर विश्रामघाट है। देवकी व वासुदेव का कारागृह, नंद व यशोदा का निवास, राधा व कृष्ण की विहार भूमि—इन सबसे ब्रजमंडल पूरा कृष्णमय है। जहां देखो मंदिर नजर जाते हैं। आज भी नए-नए मंदिर निर्मित हो रहे हैं।

5. जगन्नाथपुरी और द्वारका

दर्शन मात्र से भक्तजनों को मुक्ति दिलाने वाले सात पुण्यक्षेत्रों में जगतप्रसिद्ध क्षेत्र जगन्नाथ पुरी है। जगन्नाथ स्वामी का नाम स्मरण करते ही पूरी का नाम सामने आ जाता है। इसी तरह पूरी (पुरी आमतौर से इस्तेमाल किया जानेवाला रूप है) कहते ही मालूम होता है कि यह जगन्नाथ स्वामी का पुण्यक्षेत्र है। द्वारका भी मुक्ति देने वाले सात पुण्यक्षेत्रों में एक है। इन दोनों क्षेत्रों का श्रीकृष्ण के चरित्र से संबंधित होना एक विशेष बात है।

जगन्नाथ स्वामी मंदिर में श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्रा की मूर्तियों की पूजा होती है। श्रीकृष्ण की मूर्ति काली है। बलराम की मूर्ति गोरी है। सुभद्रा की मूर्ति पीले रंग में दिखती है। बलभद्र, सुभद्रा के सहचर्य में उस काली मूर्ति को हम कृष्ण की मूर्ति समझते हैं, मगर पंडित उसी मूर्ति को जगन्नाथ कहकर पुकारते हैं। इन तीनों मूर्तियों में निहितार्थ को वास्तव में कोई नहीं जानता। पुराण, काव्य, आगम शास्त्रों ने कई व्याख्याएं दी हैं। तमिल देशवासी तो जगन्नाथ स्वामी को अपना गणदेवता, कुलदेवता व ईष्टदेवता मानकर मन से और प्रेम से उनकी पूजा करते हैं। कहीं भी कोई भी शुभकार्य हो रहा हो तो जगन्नाथ स्वामी के नाम आह्वान पत्रिका अवश्य भेजी जाती है। उनकी दृष्टि में स्वामी लोकनायक ही नहीं उनके घर का यजमान भी है। भुवनपति को भवनपति के रूप में आराधना करना उत्कलवासियों की आत्मीयता को स्पष्ट करता है। यह मंदिर

और इस मंदिर की दिव्य मूर्ति की महिमा कितनी प्राचीन है, किसी को ज्ञात नहीं। स्कंदपुराण, ब्रह्मपुराण और मत्स्य पुराणों में इससे संबंधित कुछ तथ्य मिलते हैं। सरलादास द्वारा उड़िया भाषा में लिखे गए *महाभारत* में मौसल पर्व के आधार पर श्रीकृष्ण निर्वाण के साथ इस मंदिर का संबंध जोड़ा जाता है। कुछ भी हो पहाड़ी जनजाति के लोगों की प्रगाढ़ भक्ति से लेकर तथागतों के तत्वदर्शन तक जो भी जैसे भी पुकारे, जगन्नाथ उनकी जरूर सुनते हैं। जगन्नाथ स्वामी को जात-पांत का भेदभाव नहीं है। सब समान हैं। सब मिलकर स्वामी का प्रसाद झूठा न समझकर एक ही पात्र में खाते हैं। रोज
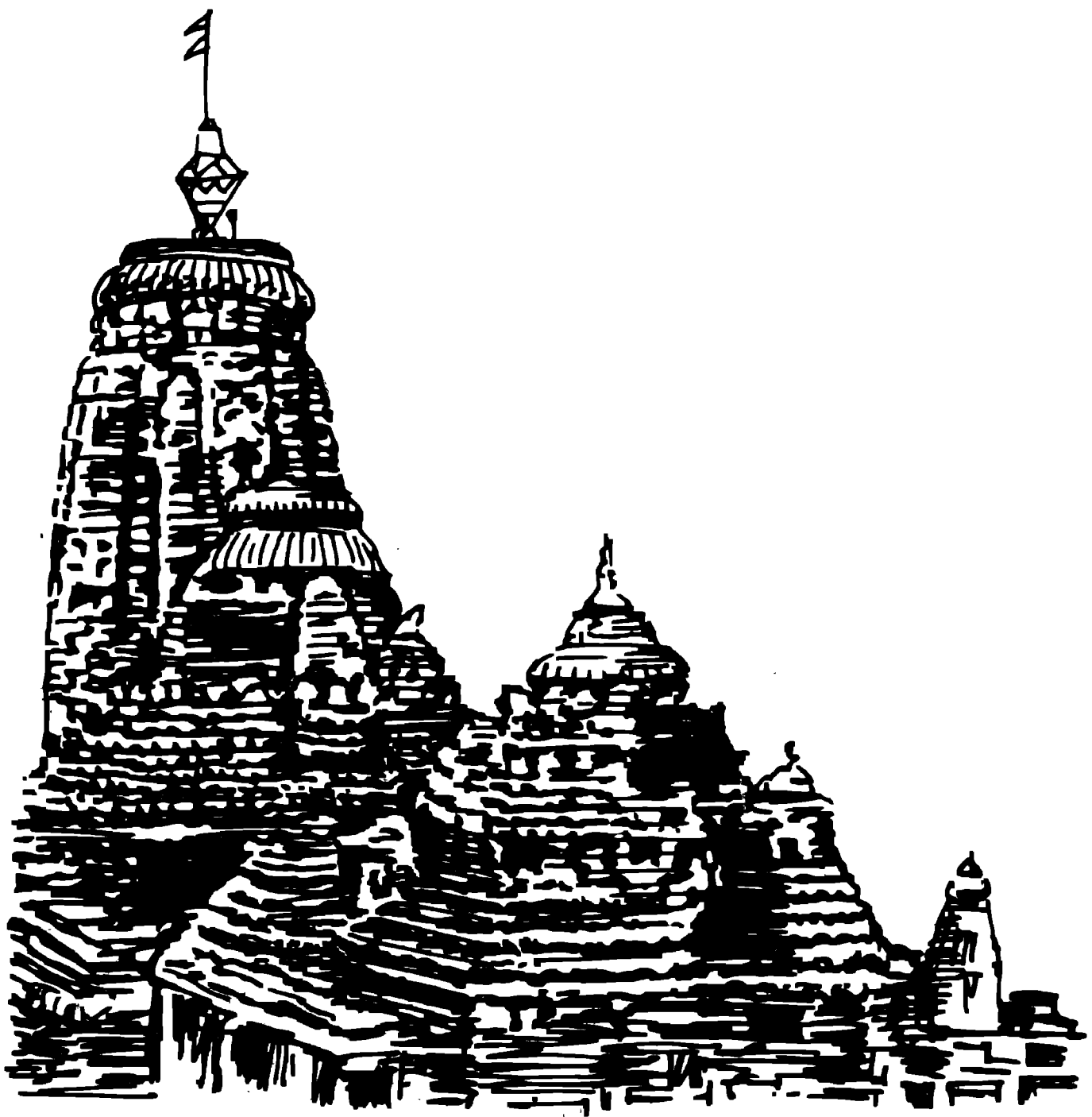
चित्र : पुरी का भगवान जगन्नाथ का मंदिर

हजारों यात्रियों को स्वामी का प्रसाद मिलता है। त्योहार के दिनों में लाखों की संख्या में भक्तजन प्रसाद के लिए पिल पड़ते हैं। ऐसा लगता है कि इतना बड़ा भोजनालय संसार में और किसी मंदिर में नहीं है।

जगन्नाथ की रथयात्रा इस क्षेत्र में साल में एक बार आषाढ़ मास में मनाई जाती है। इस रथयात्रा को देखने के लिए लाखों यात्री यहां आते हैं। रथ में बलभद्र, जगन्नाथ और सुभद्रा की मूर्तियों को प्रतिष्ठित कर रथयात्रा निकाली जाती है। रथ के 16 चक्र होते हैं। हजारों हट्टे-कट्टे लोग इस रथ को खींचते हैं। एक किलोमीटर की दूरी पर स्थित गुंडिभा मंदिर के पास जाकर रथ रुकता है। इसी बीच कई लोग उस रथ के नीचे आकर कुचल भी जाते हैं। किंतु काशी में मरण की तरह भक्तगण इसे भी गौरवपूर्ण आत्मार्पण समझते हैं। रथ के वापस जगन्नाथ मंदिर पहुंचने के बाद उसे तोड़ दिया जाता है। हर साल नया रथ बनता है।

यह प्रमुख रथयात्रा है। अलावा इसके सालभर द्विदश यात्रा के नाम पर बारह यात्राएं की जाती हैं। स्नानयात्रा ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है। चंदन पर्व 42 दिनों तक चलता है। जगन्नाथ स्वामी के मंदिर में मनाए जाने वाले त्योहार गांवों में भी मनाए जाते हैं। जगन्नाथ उत्कलवासियों का कुल देवता है।

परमात्मा के साथ इतनी आत्मीयता सबके बस की बात नहीं है।

लिंगराजमंदिर

पुरी जानेवाले यात्री भुवनेश्वर जरूर जाते हैं। यह शिवक्षेत्रं पुरी से 60 किलोमीटर की दूरी पर उड़ीसा की राजधानी भुवनेश्वर में बिंदु

सरोवर नामक तीर्थस्थल के पास है। जगन्नाथ स्वामी की तरह ही भुवनेश्वर का पालन करनेवाले स्वामी लिंगराजस्वामी भी सहज लिंगमूर्ति हैं। यहां अनगिनत शिवमंदिर क्षीण अवस्था में हैं। मगर हर एक पत्थर में प्राचीनकला का वैभव दिखाई देता है। बिंदु सरोवर के चारों ओर करीब 500 मंदिर है। सबका सरताज है लिंगराज मंदिर। शुद्धजल व दूध से नित्य स्वामी का अभिषेक किया जाता है। प्रसाद नैवेद्य, अर्चना आदि जगन्नाथ स्वामी की तरह ही यहां भी होता है। संपूर्ण जगत के स्वामी जगन्नाथ स्वामी समुद्र तट पर पुरी को पवित्र बनाते हैं तो सुंदर सलोने लिंगराज तीनों भुवनों में पावन भुवनेश्वर को हरिहरात्मक बनाते हैं।

द्वारका

लोकरक्षक परमात्मा पुरी में बलभद्र और सुभद्रा के साथ संसार की रक्षा करते हैं तो पश्चिम समुद्र तट पर द्वारकाधीश स्वर्ग और मोक्ष के द्वार दिखाते हुए पत्नी रुक्मिणी देवी को अपने मन की बात बताते हुए दिखते हैं। इस प्रकार प्राक व पश्चिम समुद्र तट पर श्रीकृष्ण के दिव्यक्षेत्रों का होना इस पुण्यभूमि की विशेषता है।

द्वापर युग में जब नारद द्वारकाधीश के दर्शन करने इस नगर में आए, तब यह नगर कितना वैभवपूर्ण था, श्रीमद्भागवत में इसका वर्णन विस्तार से किया गया है। समय के गुजरते-गुजरते वह प्राचीन नगर समुद्र में डूब गया। मगर बचे हुए अवशेष उस वक्त की शोभा का अनुमान लगाने के लिए काफी हैं। द्वारकाधीश मंदिर आज की द्वारका में मुख्य रूप से देखने लायक क्षेत्र है। इस मंदिर का निर्माण सोलहवीं शताब्दी में किया गया है। कहा जाता है कि वज्रनाथ के समय द्वापर युग में इस मंदिर को वर्तमान रूप प्राप्त हुआ। वज्रनाथ

श्रीकृष्ण के पौत्र माने जाते हैं। फिलहाल जो मंदिर हमें दिखाई देता है, वह पांच मंजिला दिव्य भवन है। मंदिर के शिखर पर सूर्यचंद्र के चिन्हों की पताका देखने को मिलती है। स्वर्गद्वार एवं मोक्षद्वार दोनों द्वारों से मंदिर में प्रवेश किया जा सकता है। गर्भगृह में चार भुजाओं वाले त्रिविक्रम मूर्ति (वामन) प्रतिष्ठित हैं। मंदिर के समीप बलभद्र के पुत्र प्रद्युम्न, श्रीकृष्ण के प्रपौत्र अनिरुद्ध और शिव केशव के लिए अलग-अलग पूजा स्थल हैं। यहां देवकी, राधा, जांबवंती, सत्यभामा आदि की मूर्तियां भी हैं। किंतु रुक्मिणी देवी के लिए द्वारकाधीश मंदिर के थोड़ी दूर पर अलग सा मंदिर है। रुक्मिणी देवी श्रीकृष्ण की अष्ट महिषियों में मुख्य भक्तिन है। इसलिए इस मंदिर को इतनी प्रमुखता दी गई है। जहां गोमती समुद्र से मिलती है वहां द्वारकाधीश का मंदिर है तो उससे दो किलोमीटर दूर पर रुक्मिणी का मंदिर है। मंदिर छोटा होने पर भी देखने में सुंदर है।

प्रभासतीर्थ और सोमनाथ मंदिर

जिस स्थान पर श्रीकृष्ण अपना अवतार समाप्त कर फिर से दिव्यधाम पहुंचे, उस स्थान को प्रभासतीर्थ कहते हैं। यही द्वादश ज्योतिर्लिंगों में एक माने जाने वाला लिंग है। इसी स्थान पर आदिलिंग सोमेश्वर या सोमनाथ स्वामी का मंदिर है। इन्हीं भगवान के नाम पर इस प्रांत का नाम "सोमनाथ" पड़ा। गोमती के संगम पर द्वारका है तो उसी समुद्र में जहां सरस्वती जाकर मिलती है, उसी स्थान पर सोमनाथ या प्रभासतीर्थ है। "सौराष्ट्र देश" के इस वसुधा प्रतिष्ठान का शंकराचार्य ने कीर्तन करते हुए सोमनाथ स्वामी का ध्यान किया है। शायद भूमाता यहां-वहां अपने तन पर ऐसे महान प्रतिष्ठानों का निर्माण कर अमर प्राणियों का सृजन करती हैं, वे

ही पुण्यक्षेत्र बंन जाते हैं।

शायद इसीलिए गोकुल में बड़े होकर, गीता का सार बांटकर और महाभारत का युद्ध चलाकर धर्म की रक्षा करने वाले श्रीकृष्ण ने अपने निर्वाण के लिए इस क्षेत्र को चुना। अपने निर्वाण का श्रेय एक शिकारी को देकर और इस नाते जगन्नाथ स्वामी को पूर्वी समुद्र तट पर प्रतिष्ठित किया।

जहां महापुरुषों ने मानव जाति की भलाई की है, वे ही स्थल वास्तविक पुण्यक्षेत्र हैं।

6. तिरूपति और तिरुमला

भारतवर्ष में ही नहीं विदेशों में भी ऐसा कोई व्यक्ति नहीं होगा, जिसने तिरूपति का नाम न सुना होगा। नित्य कल्याण एवं हरा बंदनवार की तरह प्रतिदिन सुबह तीन बजे से आधी रात तक तरह तरह के कैंकर्यो से देदीप्यमान तिरूपति वेंकटेश्वर स्वामी का मंदिर सचमुच आनंद का निलय लगता है। जैसा कि पूर्वजों ने काशी को 'आनंदवन' का नाम दिया है वैसे ही तिरूपति तिरुमला को 'आनंदनिलय' कहा जाता है। पुराणों में वर्णित वेंकटराद्रि या शेषाद्रि पर्वत पर श्री वेंकटश्वर स्वामी का मंदिर स्थित है। इसी को तिरुमला कहते हैं। यह पवित्र पर्वत सात पर्वतों का समूह है। इस क्षेत्र का महात्म्य बताता है कि आदिशेष ही यहां बल खाए पर्वत के रूप में सुशोभित हैं। पर्वत के नीचे इस क्षेत्र से संबंधित दो-तीन मंदिरों के साथ 'कपिलतीर्थ' जैसे पुण्य क्षेत्र भी हैं। पर्वत के नीचे स्थित नगर को तिरूपति कहते हैं। यात्री लोग इस क्षेत्र के भगवान को तिरूपति वेंकटेश्वर स्वामी के नाम से पुकारते हैं—"एडुकोंडल (सात पहाड़ों का) स्वामी वेंकटरमणा गोविंदा! गोविंदा!" पुकारते हुए यात्रीगण रोज हजारों की संख्या में इस पुण्यक्षेत्र के दर्शन करते हैं। केवल रात एक बजे से लेकर तीन बजे तक ही स्वामी को विश्राम का समय मिलता है।

श्री वेंकटेश्वर स्वामी को श्रीनिवास कहा जाता है। 'वेंकटचलपति' 'शेषाद्रि शेखर' कहकर भी भक्त उन्हें पुकारते हैं। उत्तर भारतवासी
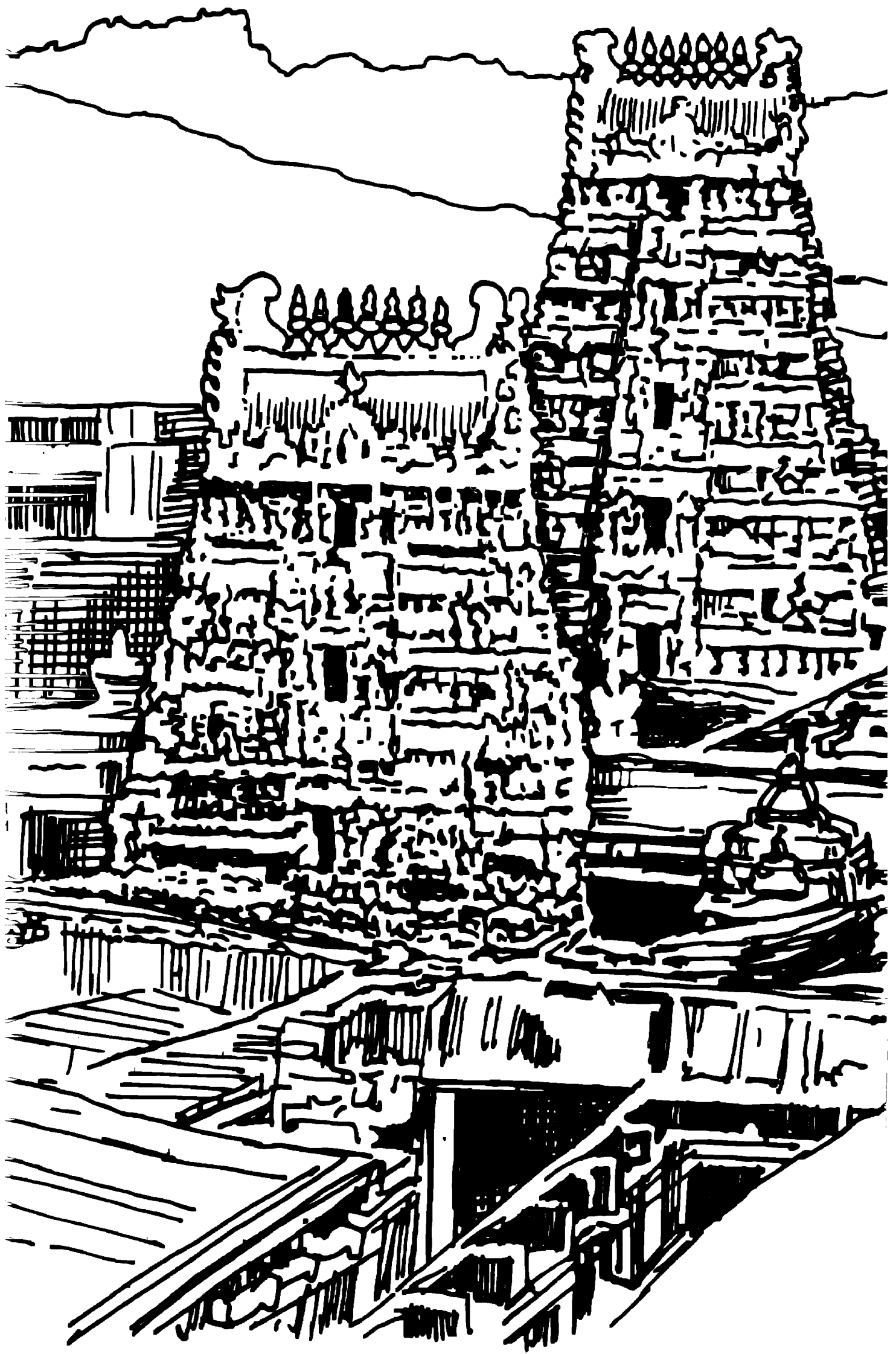
चित्र : भगवान वेंकटेश्वर का मंदिर, तिरूपति

उन्हें बालाजी के नाम से पुकारते हैं। तेलुगुभाषी उन्हें प्यार से “वड्डिकासुल स्वामी” (ब्याज के पैसे वसूलने वाले) कष्टों को हरने वाला नाम से संबोधित करते हैं। आज यातायात के साधन प्रचुर मात्रा में होते भी ज्यादातर भक्त पैदल ही सात पर्वत पार कर मंदिर पहुंचते हैं। जैसा कि इन्हें कष्टों को हरनेवाला कहा जाता है, अपने कष्टों के दूर होते ही कुछ भक्तजन अपने सिर के बाल समर्पित कर, अपनी खुशी व्यक्त करते हैं। कई लोग मूल्यवान सोने के आभूषण, पैसे आदि हुंडी में भेंट चढ़ाते हैं। कहा जाता है कि संपूर्ण भारतवर्ष में इतना संपन्न मंदिर और कोई नहीं है। फिर भी भगवान सबकी पहुंच में रहते हैं। सामान्य व्यक्ति हजारों रुपए खर्च करके पूजा न करा पाने पर भी निःशुल्क सर्वदर्शन (धर्मदर्शन) द्वारा भगवान का दर्शन कर सकता है। इतना ही नहीं, स्वामी के दर्शन कर बाहर आते ही यात्री को उनका प्रसाद दिया जाता है। यहां निःशुल्क भोजन का भी प्रबंध किया गया है जिसका उपयोग जरूरतमंद भक्त कर लेते हैं। कष्टों का सामना कर स्वामी के दर्शन करने वाले हर एक व्यक्ति को असीम आनंद मिलता है। बार-बार स्वामी के दर्शन करने की अभिलाषा जागृत होती है। तिरुमला से तिरूपति वापस जाने का मन ही नहीं करता। इस स्थान की महिमा ही ऐसी है।

दो एकड़ जमीन पर निर्मित यह मंदिर बाहर की ओर से दिखाई नहीं पड़ता। अंदर प्रवेश करते-करते क्रमशः मंदिर का वैभव दिखाई देता है। श्री वेंकटेश्वर स्वामी की मूर्ति को जितनी देर तक क्यों न देखें मन की तृष्णा पूर्ण नहीं होती। मूर्ति उतनी मनोहर लगती है। हर बार अलंकरण बदलते रहते हैं। किसी भी रूप में भगवान अपूर्व ही लगते हैं। विष्णु भक्तों को श्रीनिवास के रूप में, शिवभक्तों को वेंकटेश्वर स्वामी के रूप में, देवी भाव से देखने वालों को बालाजी

(त्रिपुरसुंदरी) के रूप में नजर आना इस मूर्ति की विशेषता है। मगर दो तीन मिनट से ज्यादा किसी को स्वामी के सामने खड़े नहीं होने दिया जाता। यही यात्रियों को दुःख का विषय लगता है। मगर लोगों की भीड़ की वजह से कोई कुछ नहीं कर सकता।

स्वामी के मंदिर के बगल में ही स्वामी की पुष्करिणी (सरोवर) है। वहां स्नान करके नरसिंह स्वामी के दर्शन कर प्रधान मंदिर में प्रवेश करना यहां का नियम है। मुख्यालय के साथ ही तिरुमला में आकाशगंगा, पापनाशम, गोगर्भतीर्थ आदि हैं। यात्रियों के लिए देवस्थानम् ने यहां वाहन, भोजन, निवास आदि की अच्छी व्यवस्था की है।

तिरुमला से उतरकर तिरूपति में आने पर यहां गोविंदराज स्वामी का मंदिर, कोदंडरामस्वामी का मंदिर, कपिलतीर्थ आदि दर्शनीय क्षेत्र हैं। तिरूपति से थोड़ी दूर पर तिरूचानूर में पद्मावती देवी का मंदिर है। इस देवी को अलिमेलुमंगा के नाम से भी पुकारा जाता है।

कई लोग पद्मावती श्रीनिवास के परिणय क्षेत्र नारायण वन के भी दर्शन करते हैं। वहां कल्याण वेंकटेश्वर स्वामी के दर्शन किए जा सकते हैं। गोविंदराज मंदिर भी देखने लायक मंदिर है। स्वामी के बड़े भाई गोविंदराज हैं। अपने छोटे भाई की आमदनी को संभालते हुए भक्तों के सुख-दुख को देखने का भार बड़े भाई पर ही है। इसीलिए 'एडुकोंडल स्वामी' के दर्शन करने के बाद बचे हुए पुण्यस्थलों के दर्शन करने की प्रथा चली आ रही है।

तिरूपति से 27 किलोमीटर की दूरी पर श्रीकालहस्ति है जहां सुंदर शिव मंदिर है। श्रीकालहस्तीश्वर इस मंदिर में वायुलिंग के रूप में बसे हुए हैं। इसे स्वयंभूलिंग कहते हैं। मंदिर में स्वामी के

सामने जलते हुए दीप हवा से हिलते हुए नजर आते हैं। द्वार के बंद होने पर भी अंदर का दीप हिलता हुआ नजर आता है। अर्चक भी इस लिंगमूर्ति को छूकर अभिषेक नहीं करते। ऐसी अर्चनाएं पूजाएं केवल उत्सव मूर्ति की ही करते हैं। यह बहुत प्रमुख शिवक्षेत्र कहलाता है।

''श्री'' का अर्थ मकड़ी, "काल" का अर्थ सांप तथा "हस्ति" का अर्थ है हाथी। ये तीनों प्राणी यहां शिव की पूजा कर धन्य हुए थे। इसलिए इस क्षेत्र का नाम श्रीकालहस्ति पड़ा। कहा जाता है कि कन्नप्पा नामक भक्त ने भी इसी क्षेत्र में शिव से तादात्म्यता प्राप्त की।

7. कामाक्षी और मीनाक्षी

श्रीचक्रस्वरूपिणी देवी की उपासना करने के लिए कंची की श्री कामाक्षी देवी का मंदिर प्रसिद्ध पुण्यक्षेत्र है। करीब सौ मंदिरों के समूह से स्वर्णनगर की तरह देदीप्यमान कंची क्षेत्र वैष्णव एवं शैवों के लिए आराध्य स्थल है। वही तपोभूमि है जहां ब्रह्मा ने यज्ञ करने के बाद वरदराज के रूप में विष्णु को सुशोभित कराया। कहा जाता है कि यहीं पार्वती ने अपने पति को आम के पेड़ के रूप में अवतरित मानकर उनकी सेवा की। इसी स्थान पर आज एकामेश्वर मंदिर है। यह कंची के सभी मंदिरों में बड़ा मंदिर है तथा प्राचीन भी है। यहां के मंदिर स्तंभ आदि सभी विशेष लगते हैं। कहा जाता है कि शिव के रूप में वर्णित यहां का आम का पेड़ करीब 3500 साल पुराना है।

वरदराज स्वामी का मंदिर भी वैष्णवों का मुख्य मंदिर माना जाता है। इस स्थान पर ब्रह्मा ने तपस्या की थी। यह मंदिर हस्तगिरि नामक पर्वत पर स्थित है। पुराणों के अनुसार यहीं पर मगर के मुंह में फंसे गजेंद्र ने विष्णु भगवान को रक्षा के लिए पुकारा था। मार्कंडेय पुराण में इस क्षेत्र से संबंधित तरह-तरह की कथाएं प्रसिद्ध हैं। यहां चांदी की छिपकली, सोने की छिपकली नाम की दो छिपकलियां भी हैं। लोगों का विश्वास है कि इन छिपकलियों को छूने से छिपकली गिरने से होने वाले अशुभ दूर हो जाते हैं। एक सुंदर कथा भी प्रचलित है कि यहीं पर लक्ष्मी, सरस्वती के बीच स्पर्धा हुई। आखिर ब्रह्मा

और विष्णु ने उनका झगड़ा निपटाया था। कंची मंदिरों के लिए ही नहीं रेशमी साड़ियों के लिए भी प्रसिद्ध है। बनारस की रेशमी साड़ी मशीनों से तैयार की जाती हैं, जबकि कंची की रेशमी साड़ी हाथ से बुनी जाती है। रेशमी साड़ियों से ज्यादा यह नगरी प्राचीन काल से अनेक दंतकथाओं के लिए प्रसिद्ध थी। इसीलिए नानी व दादी बच्चों को कहानी सुनाने के बाद कहती है 'कहानी कंची को और हम घर को।'

आदि शंकर द्वारा स्थापित कामकोटी और काडकोटी पीठ यहीं पर स्थित हैं। कई जैन मंदिर भी यहां पर देखने को मिलते हैं। वेगवती नामक नदी भी इसी पुण्यक्षेत्र के समीप से बहती है। कहा जाता है कि जब ब्रह्मा ने फैसला सुनाया कि लक्ष्मीदेवी सरस्वती से महान है, तब सरस्वती को गुस्सा आया और वह वेगवती नदी की तरह बहने लगी है। शायद इसीलिए सरस्वती सूक्त जो "वाजिनीवती" का उच्चार हुआ है उसकी स्तुति होती है। यहां एकामेश्वर लिंग एवं पृथ्वी लिंग के होने के कारण यहां की मिट्टी को महान बताया जाता है। यह भी कहा जाता है कि इस क्षेत्र में किया गया कोई अच्छा कार्य जल्दी फल देता है, और वह निरंतर फलता-फूलता रहता है।

मदुरै की मीनाक्षी

चेन्नई के बाद तमिलनाडु में सबसे बड़ा नगर मदुरै है। इसे मदुरा भी कहते हैं। यहीं पर सुप्रसिद्ध मीनाक्षी देवी का मंदिर है। कंची शैव एवं वैष्णव दोनों का मुख्य क्षेत्र है। मगर मदुरै की मीनाक्षी की शैव ही ज्यादा पूजा करते हैं। इसे शिवक्षेत्र भी कहा जाता है। इस क्षेत्र में दो मंदिर हैं। एक मंदिर में मीनाक्षी देवी की प्रतिष्ठा

की गयी है। दूसरे मंदिर में सुंदरेश्वर स्वामी प्रतिष्ठित हैं। मीनाक्षी सुंदरेश्वर के कल्याण का पौराणिक कथाओं में सुंदर वर्णन मिलता है। कहा जाता है कि पार्वती परमेश्वर ही मीनाक्षी सुंदरेश्वर के रूप में यहां अवतरित हुए हैं। ठंडे पानी में उल्लासपूर्वक घूमने वाले मछली की आंखों से भक्तों को देखकर उनकी रक्षा करती है। इसलिए इनका नाम मीनाक्षी पड़ा है। इनके अपूर्व सौंदर्य से स्वामी का नाम सुंदरेश्वर पड़ा। यहां की सुंदर शिल्प आकृतियां जो करीब हजार फुट लंबी और चौड़ी हैं इस मंदिर के मुख्य आकर्षण हैं। दीवारों पर जहां तहां मन को मोहित करने वाले चित्र देखने को मिलते हैं। बीच-बीच में गोपुर हैं। दक्षिण गोपुर पर चढ़कर देखने पर पूरी मदुरा की मनोहारिता नजर आती है। अष्ट शक्ति मंडप सभी मंडपों में प्रसिद्ध है।

8. शबरिमला और स्वामिमलै

हरिहारों के अंश को संयुक्त रूप में लेकर लोक कल्याण के लिए अवतरित स्वामी अय्यप्पा का पुण्यक्षेत्र शबरिमला है। केरल में सह्याद्रि पर्वत श्रेणी पर घने जंगलों के बीच में स्थित यह क्षेत्र, सामान्य जनों से दूर होने पर तथा रास्ता दुर्गम होने पर भी, मकर संक्रांति के दिन लाखों यात्री दीक्षा वस्त्र धारण कर कठोर नियमों का पालन करते हुए 'स्वामिये शरणमय्यप्पा' का उच्चारण करते हुए यहां आते हैं तो ऐसा लगता है कि इससे ज्यादा जनाकर्षक क्षेत्र कोई और नहीं होगा। जाति भेद न रखते हुए सभी भक्त इस क्षेत्र के दर्शन करते हैं। मगर भोजन एवं वस्त्रों के विषय में नियमों का कठोर पालन करना पड़ता है। नवंबर, दिसंबर एवं जनवरी, तीनों महीने भक्त यहां नदी के प्रवाह की तरह आते ही रहते हैं। मकर संक्रांति के दिन प्रकाशित होने वाली ज्योति को देखकर उल्लसित हो जन्म सार्थक समझकर वापस लौटते हैं। मला का अर्थ है पर्वत। शबरिमला का अर्थ है निर्मल पर्वत या आनंद का निलय।

अय्यप्पा की मूर्ति 18 इंच ऊंची, पंचलौह से बनी रमणीय मूर्ति है। क्षीर सागर मंथन में निकले अमृत को बांटने के लिए जब श्री महाविष्णु जगन्मोहिनी के रूप में अवतरित हुए तो उनके अंदर कितनी मोहित करने की शक्ति है, इसकी परीक्षा लेने के लिए शंकर उनके पीछे-पीछे गए। अंत में शंकर का मन भटक जाता है। इस तरह मोहिनी और शंकर के तेज से अय्यप्पा का उदय होता है। महिषासुर

वध के बाद महिषी के वध के लिए अय्यप्पा जैसे तेजस्वी की आवश्यकता हुई थी। ऐसे तेजस्वी के जन्म के वास्ते इस प्रकार के देवयोग का समायोग हुआ। अय्यप्पा की महिमा के बारे में भक्त अनेक रूपों में वर्णन करते हैं। जो भक्त मंडलदीया (41 रोज की) का पालन करते हैं, वे ही मंदिर में प्रवेश करने के लिए बनी 18 सीढ़ियां चढ़ सकते हैं। 15 से 50 वर्ष की महिलाओं का मंदिर में प्रवेश निषेध है। पुरुष काली लुंगी, काला शर्ट, काला तौलिया, गले में पूजा की सामग्री की थैली, माथे पर बिंदी लगाकर चलते हैं। इन सीढ़ियों को चढ़ने और उतरने के लिए सिर्फ दो पर्यायों (मुन्वश्रतर) का ही प्रयोग किया जाता है। इतने सारे नियमों के अनुसार चलकर जब यात्री अपनी यात्रा पूरी करते हैं, तो उनको इतना आनंद मिलता है, जितना आनंद मुक्ति प्राप्त करने से होता है।

शबरिमला का पंपा नदी तट पर होना यहां की एक और विशेषता है। रामायण के अनुसार शबरी यहीं पर श्री राम के दर्शन कर तथा उनको जंगली फल खिलाकर धन्य हुई। शबरी ने जब मातंगवन में काम किया था, तब के मातंग मुनि की महिमाओं के बारे में जब शबरी ने राम को बताया तो राम आनंद से भर जाते हैं। ऐसी ही महिमाओं को आज भी अय्यप्पा के भक्त याद करते हैं।

स्वामिमलै

हरिहर के अंश से पैदा हुए अय्यप्पा की तरह गंगा, पार्वती, अग्नि आदि छह माताओं के सहयोग से पैदा हुए और पले पोसे गए कुमार स्वामी भी पिता से बेहतर पुत्र कहलाए। अय्यप्पा और कुमार स्वामी दोनों ने असाधारण परिस्थितियों में योगबल से महान उद्देश्य की

पूर्ति हेतु जन्म लिया था। कृतिका नक्षत्र में जन्म लेकर कृतिका देवी के दूध से बड़े होकर छह मुख तथा बारह भुजाओं से युक्त देवताओं के सेनापति के रूप में प्रख्यात कुमारस्वामी, जिन्होंने तारकासुर का संहार किया सुब्रह्मण्यम स्वामी, षण्मुख, आर्मुग, कार्तिकेय, शरवणभव आदि अनेक नामों से पुकारे जाते हैं। अपार पराक्रम के साथ आत्मज्ञान में भी प्रवीण हैं ये शिवकुमार स्वामी। 'प्रणवनाद का रहस्य ब्रह्मा को क्या मालूम?' कहते हुए उनसे सवाल करके उस रहस्य को अपने पिता के कानों में बताया इस छोटे से बालक रूपी गुरु सुब्रह्मण्यम ने।

संसार के स्वामी परमेश्वर को ही अपना शिष्य बनानेवाले सुब्रह्मण्यम स्वामी को स्वामीनाथ भी कहा जाता है। पूरा स्कन्द पुराण इनकी गाथाओं से भरा पड़ा है। ऐसे स्वामीनाथ स्वामीमलै में आराध्यदेव के रूप में प्रतिष्ठित हैं। तंजाउर जिले में कुंभकोणम् से 6 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है यह पुण्यक्षेत्र स्वामीमलै। क्योंकि स्वामीनाथ ने अपने पिता की भुजाओं पर बैठकर उनके कानों में प्रणव रहस्य का उपदेश दिया था, इसलिए इस मंदिर में, नीचे तल पर ईश्वर की सन्निधि है जहां से 60 सीढ़ियां चढ़ने पर सुब्रह्मण्यमस्वामी का मंदिर मिलता है। संपूर्ण मंदिर को स्वामीमलै कहते हैं। छह मुंह वाले स्वामी होने के कारण, इस स्वामी के नाम पर तमिलनाडु में छह क्षेत्र स्थित हैं। उनमें प्रथम क्षेत्र स्वामिमलै है। चेन्नई से तिरूपति जाते वक्त रास्ते में तिरूत्तणि नामक सब्रह्मण्य क्षेत्र आता है। यह भी उन छह क्षेत्रों में से एक है। कहा जाता है कि इसी क्षेत्र में कुमारस्वामी ने वल्लीश्वरी को अपनाया और अपने अनुकूल बनाया। कृतिका नक्षत्र के दिन यहां विशिष्ट पूजाएं की जाती हैं। यहां पर "सोमरिपीठ" नामक स्थल है। कहा जाता

है कि वहां पहुंचते ही सबको आलस आ जाता है और सब ऊंघने लगते हैं।

वैसे ही मदुरा से 8 किलोमीटर की दूरी पर "तिरूप्परकुंडम" नामक एक और मंदिर है। यहीं पर कार्तिकेय ने देवयानी से विवाह किया था। यहीं पर सूरपद्मा नामक राक्षस का भी संहार किया था। इसके पास ही "पयमुदिर चोलय" नामक मंदिर है। कहा जाता है कि यहां स्वामी ने ग्वाले के वेष में आकर अव्वय्यार नामक भक्तिन को जामुन खिलाकर उसकी भूख मिटाई और उसे अनुग्रहीत किया।

इसी तरह पलनी और तिरूच्चेंदुर में भी स्वामी के अलग-अलग मंदिर हैं। पलनी की स्वामी की मूर्ति पंचमूलिकाओं से बनाई गई है। यहां दंडपाणी के रूप में स्वामी साक्षात्कार होकर तीर्थ प्रसाद से भक्तों को अच्छा स्वास्थ्य प्रदान करते हैं। तिरूच्चेंदुर समुद्र तट पर होने की वजह से देखने एवं सेवन करने में आनंद की प्राप्ति होती है। यह मंदिर काफी प्राचीन है। इस मंदिर के प्राकार्य में हजारों सालों की शिल्पकला का वैभव नजर आता है। मंदिर के प्राकार्य में 24 तीर्थ हैं। उनमें "नाविभावि" नामक तीर्थ में मीठा पीने का पानी मिलता है। बचे हुए सभी तीर्थों में पानी खारा होता है।

इस मंदिर में स्वामी ईश्वर की अर्चना करते हुए एक हाथ में जपमाला तथा दूसरे हाथ में पूजा के फूल लिए हुए दर्शन देते हैं। मूर्ति को देखने से लगता है कि स्वामी अनुग्रह के वचनों का उपदेश दे रहे हैं।

9. कालीमाता और कन्याकुमारी

सभी धर्मों के सार को ग्रहण कर संसार को अच्छाई बांटने वाले परमहंस को जन्म देने वाली माता जगन्माता काली हैं। परमहंस के आदेश पर सागर संगम को ढूंढ़ते हुए आए विवेकानंद यतीश्वर को सागरकन्या; कन्याकुमारी ने जगदगुरु के रूप में स्थापित किया है। पराशक्ति स्वरूपिणी इन दोनों देवियों—कालीमाता और कन्याकुमारी के मंदिरों का एक साथ स्मरण करना समीचीन है। कालीमाता सिर्फ कलकत्ता की ही नहीं, बंग देश की पूज्य माता है। संसार के 51 शक्तिपीठों में यह एक मूलाधार पीठ है। पुराणों के अनुसार दक्ष के यज्ञ में आहत हुई सती देवी के शरीर को परमेश्वर जब गुस्से में दसों दिशाओं में प्रदर्शित करते जाते रहे, तब विष्णु ने अपने चक्र से सती देवी के शरीर के 51 टुकड़े किए थे, जिनमें से माता का पादाग्र भागीरथी तट पर गिरा। वहीं पर यह कालीक्षेत्र स्थापित हुआ। गंगासागर संगम के थोड़ी ही दूर पर स्थित क्षेत्र में कालीमाता को उचित स्थान प्राप्त हुआ है। जगन्नाथ स्वामी पुरी निवासियों के ही नहीं पूरे उत्कल देशवासियों के जिस तरह कुलदेवता और आराध्य हैं, उसी तरह बंगदेशियों की, मुख्य रूप से कलकत्ता निवासियों की काली माता हृदय की देवी है। कलकत्ता के निवासियों को काली माता में ही दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती सबके दर्शन होते हैं। काली के उपासक लोग मानते हैं कि काली माता को 'मागो माता' कहकर पुकारते ही, वह उनकी फरियाद सुनती हैं। वह उनकी ईष्ट देवी हैं।

देवी नवरात्रों के नौ दिनों में कलकत्ता के बालगोपाल देवी संकीर्तन में तन्मय होकर नृत्य करते हैं। महालय के दिन सुबह उठकर "या देवी" स्त्रोत के पारायण से लेकर विजयदशमी के दिन, माता के विसर्जन तक हर एक व्यक्ति उत्सव की धुन में रहता है। देश के किसी कोने में भी क्यों न हो, बंगदेशवासी इस पूजा को जरूर संपन्न करते हैं। सामूहिक रूप से मनाया जाने वाला यह त्योहार अधिक जीवंतता से भरा होता है।

माता की मूर्ति उग्र रूप धारण किए होती है। रक्त बिंदुओं से सनी जीभ, गले में अस्थिपंजरों की माला, बिखरे केश, विशाल नेत्र, हाथ में खड्ग धारण कर, देखने में काफी भयानक लगती हैं। मगर भक्तों को कृपादृष्टि से देखती हैं।

कलकत्ता से सौ किलोमीटर की दूरी पर गंगा सागर संगम है। मकर संक्रांति के दिन यहां बहुत बड़ा उत्सव होता है। इस दिन इस संगम स्थल पर स्नान करने के लिए अनेक कष्ट झेलते हुए भी लाखों यात्री यहां आते हैं। कालीघाट में माता जितनी उग्र नजर आती है, गंगा सागर में उतनी ही शांत नजर आती है। मगर यात्रियों को दोनों जगह काफी मेहनत करनी पड़ती है।

दक्षिणेश्वर में काली माता को जरूर देखना चाहिए। त्योहार के दिनों में यहां भी लोग भरे रहते हैं। मगर भागीरथी में स्नान करने से शांति प्राप्त होती है। बारहलिंग भी इस मंदिर में एक के बाद एक नजर आते हैं। जो भक्त वहां भरपूर पूजा, अभिषेक आदि करना चाहे तो कर सकते हैं। श्री रामकृष्ण परमहंस ने यहीं पर कालीमाता की पूजा की थी। श्रीमाता शारदा देवी के साथ परमहंस इसी पुण्यस्थल में निवास करते थे।

गंगा पार करते ही सामने बेलूर मठ नजर आता है। यह शांत

स्थल है। आस्तिकों के अनुसार गुरु शिष्य यहीं विचरते रहते हैं। विवेकी व्यक्तियों के लिए यह आनंद का मंदिर है।

कन्याकुमारी

बंगाल की खाड़ी, हिंद महासागर और अरब सागर—तीनों के मिलन स्थन पर भारतवर्ष के दक्षिणी कोने में कन्याकुमारी मंदिर है। तीन नी यों (गंगा, यमुना और सरस्वती) के मिलने के कारण ही प्रयाग तीर्थराज बना, तीन महासमुद्रों का संगम स्थल कितना महत्तर एवं पुण्यक्षेत्र होगा यह अलग से कहने की जरूरत नहीं। पराशक्ति रूपिणी कन्या का परमेश्वरी के दर्शन करने के लिए आए यात्रीगण यहां आंखों को आह्लादित करने वाले सूर्योदय व सूर्यास्त को देखकर आनंदित होते हैं। पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त के समय में सूर्यास्त और चंद्रोदय एक साथ एक ही क्षितिज में देखने का सुंदर व अनोखा अनुभव प्राप्त होता है। प्रकृतिमाता द्वारा यात्रियों को प्रसादित यह एक दिव्य परमानंद है। भारत देश के दक्षिणी कोने को सूचित करनेवाली दो शिलाएं यहां नजर जाती हैं। उनमें एक को पितृतीर्थ तथा दूसरे को मातृतीर्थ कहा जाता है। कई लोग यहां स्नान करते हैं। यहां की रेत सात रंगों में दिखती है। भक्त इसे पार्वती-परमेश्वर के विवाह में प्रयुक्त अक्षत मानते हैं।

अम्मण्णी का मंदिर देखने लायक है। सोलह कलाओं से परिपूर्ण दयामयी माता का मुख एवं मुख पर की सुंदर नथनी का प्रकाश तीनों समुद्रों को पार कर असीम मानव समुदाय को आलोक प्रसादित करता है। अम्मण्णी के आभूषणों में नागमणी सबसे ज्यादा प्रकाशमान है। केवल त्योहारों के अवसरों पर ही इसे माता को पहनाया जाता है। बाकी दिनों में इन्हें संभालकर रखा जाता है।

एक पुराणगाथा के अनुसार भाणासुर के संहार के लिए ही अम्मण्णी का अवतरण हुआ है। इस कार्य के पूरा होने से पहले ही परमशिव से उनका प्यार हो गया। मगर देवताओं की भलाई के लिए नारद परमशिव के आगमन में देरी कर देता है। आखिरकार असुर का संहार ठीक ढंग से हो जाता है। मगर परमशिव शुचींद्र नामक क्षेत्र में स्थानीय देवता के रूप में रुक जाते हैं। वहां परमशिव, यहां अम्मण्णी एक दूसरे का इंतजार करते रह जाते हैं। कन्याकुमारी चिरकुमारी के रूप में रह जाती है।

समुद्र तट से थोड़ी दूर पर विवेकानंद स्वामी की तपश्शिला है, जहां उन्होंने ध्यान किया था। यात्रीगण वहां आकर ध्यान करते हैं।

10. शुचींद्रम और त्रिवेंद्रम

केरल के मुख्य शहर तिरुवनंतपुरम (त्रिवेंद्रम्) से कन्याकुमारी जाने वाले रास्ते में शुचींद्रम नामक पुण्यक्षेत्र है। कन्याकुमारी से दस पंद्रह किलोमीटर की दूरी पर स्थित इस क्षेत्र में त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु एवं परमेश्वर) एक मूर्ति की तरह प्रतिष्ठित हुए हैं। यहां का मंदिर बहुत विशाल है। सभी कमरों में पुराणगाथाएं दीवारों पर नजर आती हैं। मंदिर में प्रवेश करते ही हनुमान की मूर्ति आंखों को आह्लादित करती हुई दिखाई पड़ती है। कन्याकुमारी से विवाह करने की इच्छा लिए परमेश्वर यहां स्थानेश्वर के रूप में ब्रह्मचर्य का व्रत पालन करते हुए प्रतिष्ठित हैं। कल्याण मंडप में सप्त स्वरों का नाद सुनने वाले संगीत की शिलाएं है। पुराणगाथाओं के अनुसार देवकार्य हेतु अहल्या को धोखा देने के बाद गौतम महर्षि द्वारा शापग्रस्त होकर इंद्र यहीं पर तपस्या कर शुचींद्र (पुनः अपनी पवित्रता को पाया) बने। कहा जाता है कि इंद्र आधी रात को इस मंदिर में प्रवेश कर गरम-गरम घी पर चलकर प्रभात समय तक त्रिमूर्तियों की सेवा कर जाया करते थे। इतनी कठोर तपस्या करने पर ही इंद्र शुचींद्र बन पाए। इसीलिए इस क्षेत्र का नाम शुचींद्रम पड़ा।

इस क्षेत्र के पास ही बहुत बड़ा जंगल है। कहा जाता है कि अत्रि महर्षि और उनकी पत्नी अनुसूया ने इस जंगल में तपस्या की थी। अनुसूया देवी परम साध्वी है। आदर्श पतिव्रता है। ईर्ष्या क्या है, वह जानती नहीं। उनकी परीक्षा लेने के लिए आए त्रिमूर्तियों

को छोटे बालक बनाकर उनको उन्होंने भोज दिया। इस भोज को स्वीकार कर संतुष्ट त्रिमूर्ति शुचींद्र में एक लिंग के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। इस महालिंग में प्रथम भाग में ब्रह्मा, मध्य में विष्णु तथा शिरोभाग में शिव स्वरूप हैं। कहा जाता है कि अत्रि दंपति को त्रिमूर्तिगण ने चंद्र, दत्तात्रेय एवं दुर्वासा के रूप में दर्शन दिए। तीनों मूर्तियों से अतीत विश्वरूप के साक्षात्कार किए हुए पुण्य दंपत्ति की निवास भूमि होने के कारण यह भयंकर जंगल पुण्यक्षेत्र के रूप में बदल गया। करीब दो हजार वर्ष पुराना दिव्य वृक्ष इस मंदिर में है। इसी वृक्ष से त्रिमूर्ति लिंग का आविर्भाव हुआ। सृष्टि, स्थित, लय इन तीनों के मूल कारक त्रिमूर्ति को एक करने वाले शुचींद्र की पवित्रता का साक्षी बना है यह क्षेत्र। किसी भी जाति के लोग इस क्षेत्र के दर्शन कर स्वामी की सेवा कर सकते हैं।

मंदिर के परिसर में करीब 30 छोटे मंदिर हैं। सीताराम, नवग्रह, संगीत से संबंधित शिल्प, सात मंजिला गोपुर और हजार वर्ष पुराना नंदी–इन सबको देखने से लगता है कि यह एक तरह का आनंदलोक है।

अनंत पद्मनाभस्वामी

तिरुवनंतपुरम में मुख्य रूप से देखने लायक मंदिर है; अनंत पद्मनाभस्वामी का मंदिर। यह काफी प्राचीन मंदिर है। सन् 1733 में मार्तंडवर्मा नामक राजा ने पद्मनाभस्वामी को अपना सर्वस्व अर्पित कर "पद्मनाभदास" के नाम से राज्य किया। इस तरह स्वामी के प्रतिनिधि के रूप में प्रजापालन करने वाले राजा बहुत कम देखने को मिलते हैं। राम की पादुकाओं को सिंहासन पर अलंकृत कर रामराज्य के सेवक की भांति भरत ने जिस प्रकार राज किया था,

उसी प्रकार पद्मनाभस्वामी के सेवक की भांति मार्तंडवर्मा ने राज्य चलाया। उनके बाद इसी परंपरा को आगे बढ़ाने वाले महापुरुष थे मार्तंडवर्मा। इस कार्य से महात्मा गांधी बहुत आकर्षित हुए। पद के मोह में प्रजा को नजरअंदाज करने वाले प्रजा-प्रतिनिधियों से भरे इस युग में अनंतपद्मनाभस्वामी के दास के रूप में शासन करने वाले मार्तंडवर्मा बेशक महान राजा कहे जा सकते हैं। उनके बाद के राजा ने भी इस परंपरा को आगे बढ़ाया। कहा जाता है कि दलितों को सर्वप्रथम इसी मंदिर में प्रवेश करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। महात्मा गांधी के प्रोत्साहन से यह संभव हुआ।

मंदिर में स्वामी की मूर्ति लेटी हुई देखने को मिलती है। आदिशेष अनंत के हजार फणों पर शयन करते पद्मनाभस्वामी के दर्शन के लिए एक द्वार काफी नहीं है। 18 फुट की शय्या पर स्वामी जी सोए हुए हैं। इस कारण उनकी नाभि का कमल मध्यद्वार से दिखता रहता है। एक ओर से वक्षस्थल एवं सिर देखा जा सकता है; दूसरी ओर से चरणों के दर्शन किए जा सकते हैं। विष्णु की इतनी विशाल मूर्ति किसी और विष्णु के मंदिर में नहीं है। नाभिकमल से सृष्टिकर्ता का उदित होना भी यहां देखा जा सकता है। अनंत शयन, अनंत रूप, अनंत वैभव; ये सब पद्मनाभस्वामी को अनंत मूर्ति के रूप में हमें प्रसादित करते हैं। "सत्यम ज्ञानम् अनंतम्" यह वेद वाक्य इस मंदिर में स्वामी को देखते ही याद आता है। कहा जाता है कि यह मूर्ति बारह हजार शिलाग्राम शिलाओं से बनाई गई है। इस आलय प्रांगण में हजारों की संख्या में स्तंभ ही नहीं, सीता, राम, लक्ष्मण और हनुमान के मंदिर भी हैं। गर्भगृह में प्रवेश करते वक्त योग नरसिंह स्वामी का मंदिर है। ठीक ऐसा ही मंदिर आदि केशवदेवालय

के नाम से, यहां से 45 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहां के स्वामी की मूर्ति भी 18 फुट ऊंची है। इनका मुख पश्चिम की दिशा में होने के कारण कहा जाता है कि वे पद्मनाभस्वामी को देख रहे हैं। वह आदि हैं तो यह अनंत।

11. गुरुवायूरू और तिरुवारूर

स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और पाताल लोक—तीनों लोकों से मिला भूलोक बैकुंठ है, गुरुवायूरू का श्रीकृष्ण मंदिर। इस मंदिर के बारे में, मंदिर की मूर्ति के बारे में नारदपुराण में विचित्र गाथाएं हैं। पहले पहल ब्रह्मदेव इस मूर्ति की पूजा किया करते थे। पुत्र के द्वारकाधीश बनने के बाद पिता वासुदेव ने अपने पुत्र को यह मूर्ति दे दी। अपना अंतिम समय पास आते देख श्रीकृष्ण परमात्मा ने अपने प्रिय मित्र उद्धव को इसे प्रसादित कर भूलोक छोड़कर गोलोक चले गए। कहा जाता है कि कालक्रम में द्वारका के समुद्र में लीन होते समय इस मूर्ति को बृहस्पति (गुरु), और वायुदेव ने मिलकर परशुराम की सहायता से गुरुवायूरू नामक स्थान पर लाकर प्रतिष्ठित किया। गुरु, वायु ने मिलकर इस मूर्ति के लिए सही स्थान चुनकर इस पुण्यक्षेत्र में प्रतिष्ठित किया, इसलिए इस स्थान का नाम गुरूवायूरू (गुरू+वायु+ऊरू) पड़ा। "नारायणीयम्" नामक ग्रंथ के रचनाकार नारायण भट्टात्रि ने इस क्षेत्र को "गुरु-पवन-पुरी" नाम दिया है। यह विदित सत्य है कि इस ग्रंथ की रचना से उस कविपुंग का दीर्घरोग, वायुरोग का निवारण हो गया।

पांच हजार वर्षों की प्राचीन, यह मूर्ति सामान्य रीति में तैयार की गई मूर्ति नहीं है। पातालांजनम नामक एक विशिष्ट पदार्थ से यह दिव्यमूर्ति तैयार की गई है। कहा जाता है कि गुरु और वायु जब परशुराम से मिलकर इस स्थान पर आए थे तब शंकर यहां

तपस्या कर रहे थे। शंकर ने उस मूर्ति को देखकर उसके लिए सही स्थान कहा था। बाद में वे गुरु और वायु को आशीर्वाद देकर स्वयं दूसरे स्थान पर चले गए। इससे पहले रुद्रतीर्थ के नाम से विख्यात यह पुण्यक्षेत्र आज गुरूवायूरू के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहां के स्वामी गुरूवायुरप्पा के नाम से प्रसिद्ध हुए।

स्वामी की मूर्ति अति सुंदर लगती हैं। शंख, चक्र, गदा और पद्म चारों हाथों में धारण कर, तुलसीमाला गले में डाले भक्तों की इच्छाओं को बिना मांगे पूरा करने के लिए तैयार बैठे बाल कृष्ण को देखते ही ऐसा लगता है कि पापों का परिहार हो गया। सुबह 3 बजे से लेकर रात 10 बजे तक पूजाएं होती ही रहती हैं। दोपहर के वक्त विवाह के कार्यक्रम ज्यादा किए जाते हैं। बड़ों का कहना है कि जो यहां विवाह करते हैं; उनका जीवन सुखमय होता है। कई लोग मन्नत मांगते हैं, और मन्नत की पूर्ति होने पर वे "तुलाभार" कराते हैं। तराजू में एक ओर बैठकर दूसरी ओर चांदी, सोना या उनकी पसंद की वस्तु तौलकर भगवान को समर्पित करते हैं। जमाने से भगवान को समर्पित ऐसे कई आभूषण अब भी मंदिर में रखे हुए हैं। सभी वस्तुओं को सुरक्षित रखने के लिए मंदिर में अलग कमरा है। उसके पास कोई नहीं जाता। कहा जाता है कि इसमें पंचनाग नामक पांच सांप रहते हैं।

इस मंदिर में संगीत, नृत्य आदि कार्यक्रम भी होते हैं। रुद्र तीर्थ में स्वामी का अभिषेक किया जाता है। शाम को जुलूस निकाला जाता है। जयदेव का गीत गोविंद यहां प्रसिद्ध ग्रंथ है। यहां पर श्रीकृष्ण जन्माष्टमी वैभव के साथ मनाई जाती है। इतना ही नहीं यहां पर एकादशी से संबंधित त्योहार भी मनाए जाते हैं, इस मंदिर में हाथियों को मुख्य स्थान प्राप्त है। हाथियों की प्रतियोगिताएं भी

उत्साह के साथ आयोजित की जाती हैं।

गुरूवायुरू बहुत महिमावाला क्षेत्र कहलाता है। इसीलिए यहां नियम आचार ज्यादा हैं। "श्रीकृष्णकर्णामृतम" के रचनाकार बिल्वमंगल ठाकुर ने कई बार मंदिर के दर्शन किए। पारमार्थिक वैभव के साथ (भौतिक) समृद्धि में भी यह पुण्यक्षेत्र भूलोक वैकुंठ है। दक्षिण की द्वारका नाम देकर भक्तगण इसकी प्रशंसा करते हैं।

तिरुवारूर

गुरुवायूरू केरल में प्रतिष्ठित कृष्णक्षेत्र है तो तिरूवारूर तमिलदेश में कावेरी के तट पर तंजावूर के समीप स्थित त्यागराजक्षेत्र है। कर्नाटक संगीत को नवीन स्फूर्ति प्रसादित करने वाले भक्तगायक-शिरोमणि त्यागराज का यह जन्मस्थान है। यहां त्यागराज के नाम पर एक शिवालय भी है। इसी मंदिर में संतान के लिए उनके माता-पिता ने पूजा की थी। तंजावूर से 60 किलोमीटर की दूरी पर स्थित यह शिवाक्षेत्र काफी प्राचीन है। इतना ही नहीं काफी विशाल भी है। बाहर की दीवारें 846 फुट लंबी तथा 666 फुट चौड़ी हैं। दक्षिण देश के मंदिरों में यह सबसे बड़ा मंदिर है। यहां पर "कमलालय" नामक बड़ा सरोवर है। उसके बीचों-बीच कमलांबिका मंदिर भी है। कहा जाता है कि इससे बड़ा आलय तट और कहीं नहीं है।

लोगों का कहना है कि मुचिकुंद महाराज ने इस मंदिर का निर्माण करवाया था। अचलेश्वर नामक इस लिंग की प्रतिष्ठा भी उन्होंने ही की थी। कहा जाता है कि किसी भक्त को दिए वचन के अनुसार यह लिंग कभी नहीं हिलता। लिंग की परछाई भी नहीं हिलती। जब देखो पूरब की ओर ही नजर आती है। यह परछाई ऐसे व्यक्तियों

को नजर नहीं आती जिसकी मौत छह मास के अंदर होनेवाली हो।

ऐसी महिमावाले क्षेत्र में त्यागब्रह्म का जन्म हुआ। "नादतनु मनिशम शंकरम् नमामि मनसा शिरसा" कहकर भजने वाले त्यागराज शिव के अनुग्रह से ही जन्मे होंगे।

त्यागराज का जन्म तो तिरूवारूर में हुआ मगर वे पले बड़े हुए थे तिरूवैयार में। इसे पंचनद क्षेत्र भी कहा जाता है। तीन चार शताब्दियों से त्यागराज के कर्नाटक संगीत की वाणी में लिखे गए संकीर्तन देश, काल और भाषा भेदों को पार कर नाद ब्रह्म की सेवा करने के नए दृष्टिकोण को विकसित कर रहे हैं।

12. वैष्णो देवी और ज्वालामुखी

जम्मू कश्मीर में जम्मू से 60 किलोमीटर की दूरी पर एक पहाड़ की गुफा है। वहीं वैष्णो देवी या वैष्णवी पुण्यक्षेत्र है। सृष्टि, स्थिति और लय की मूलाधार रूपिणी पराशक्ति को महासरस्वती महालक्ष्मी और महाकाली के रूप में निरूपित करनेवाली तीन मूर्तियां गुफा के मंदिर में हैं। यात्री "जय माता दी, जय माता दी" गाते हुए करीब घुटनों के बल चलकर गुफा में प्रवेश करते हैं। गुफा में पहुंचने के लिए भी काफी दूर चलना पड़ता है। फिर भी हाथ में लाठी पकड़े हांफते हुए पैर बढ़ाते बूढ़े भक्त भी माता का नाम जपते हुए यात्रा पूरी कर लेते हैं।

देवी की महिमा अपार है, कहते हुए भक्त आध्यात्मिक बल से इस यात्रा को पूरा कर अपने को धन्य मानते हैं। लाखों यात्री त्रिकूट शिखर में स्थित गुफा के दर्शन कर माता का आशीर्वाद प्राप्त कर वापस लौटते हैं। गुफा के रास्ते में बाणगंगा, चरण पादुक, हाथी-मत्था, चरणगंगा नामक कई ऐसे पवित्र स्थान हैं, जिन्हें पार करना पड़ता है। चरणगंगा का पानी ठंडा होता है।

वाल्मीकि रामायण में स्वयंप्रभा नामक तपस्विनी के निवास का वर्णन है। वैष्णो देवी की गुफा भी करीब वैसे ही है। इस गुफा के करीब एक राममंदिर भी है।

भैरव नामक राक्षस का संहार करनेवाली श्रीवैष्णवी ने उसे मोक्ष प्राप्त करवाया। भैरव मंदिर भी अम्मण्णी मंदिर से थोड़ी दूरी पर

है। देवी के दर्शन कर यात्री भैरव का भी दर्शन करते हैं।

असम का "कामाख्या" (कंची कामाक्षी माता जैसी) मंदिर भी ऐसी ही महिमा से परिपूर्ण शक्ति पीठ है। गुवाहाटी में पांडू के समीप पर्वत गुफा दिखती है। पहाड़ पर चलकर जाया जा सकता है। यहां की पूजाएं व सेवाएं सब तांत्रिक पद्धति में ही की जाती हैं। यह अपने देश के पुण्यक्षेत्रों में एक है।

वैष्णो देवी गुफा की तरह हिमाचल प्रदेश में भी एक और पुण्यक्षेत्र है। निरंतर प्रज्ज्वलित होनेवाली ज्वालामुखी की तरह यहां की देवी दिखती है। कहा जाता है कि जब सुदर्शन चक्र ने सती देवी के शव का छेदन किया तब देवी की जीभ इस क्षेत्र में आकर गिरी। इसलिए 51 शक्तिपीठों में इसे एक माना जाता है।

देवी का मंदिर पहाड़ पर 50 सीढ़ियों के ऊपर निर्मित है। मंदिर में एक पत्थर के ऊपर से देखा जाए तो ज्वालामुखी जैसी माता के दर्शन होते हैं। करीब दो वर्गफुट की वेदी पर जलते हुए देवी को दूध, घी, मीठे पदार्थों का भोग चढ़ाया जाता है। कहा जाता है कि अकबर चक्रवर्ती ने माता के लिए चांदी का छत्र बनवाया था। वह छत्र आज भी देखने को मिलता है।

13. अमृतसर और आनंदपुर

'गुरु ही भगवान है', वाला वाक्य ही मूल मंत्र है और गुरु को बतानेवाला द्वार ही गुरुद्वार है, इनको मानते हुए और मानव मात्र को अच्छाई सिखानेवाला ही धर्म है, इसका प्रचार करनेवाले गुरु नानक ने सन् 1497 में सिख धर्म की स्थापना की। गुरु नानक ने उपदेश दिया कि ईश्वर एक है। स्नान, दान व ध्यान से सब उसे पा सकते हैं। ऐसे सिखों का प्रधान केंद्र है अमृतसर का स्वर्ण मंदिर। इसे हरमंदिर भी कहा जाता है। आलय शिखर सौ किलोग्राम सोने से मढ़ा हुआ है। इसीलिए इसका नाम स्वर्णमंदिर पड़ा।

सिखों का ग्रंथ "ग्रंथ साहिब" है। यह आदि ग्रंथ भी कहा जाता है। सिखों की गुरु परंपरा में आदि गुरु गुरुनानक और उनके बाद दस गुरुओं ने धर्माचार्यों के रूप में इस संप्रदाय को आगे बढ़ाया। उसके बाद दसवें गुरु, गुरु गोविंद सिंह ने यह कहकर कि अब हमारा ग्रंथ साहिब ही गुरु पीठ को सुशोभित करेगा और अब आगे गुरु की जरूरत नहीं, गुरु परंपरा को समाप्त किया था। तब से ग्रंथ साहिब गुरुग्रंथ साहिब के नाम से पुकारा जाने लगा। तब से वह ग्रंथ गुरु और देवता के रूप में पूजा जाने लगा। नियमों के पक्के सिख अपने घरों में एक अलग कमरे में ग्रंथ साहिब को रखकर उसकी नित्य पूजा करते हैं।

इस ग्रंथ का संकलन सिखों के पांचवें गुरु अर्जुन सिंह ने किया है। हरमंदिर साहिब में पूजा जानेवाला ग्रंथ यही आदिग्रंथ है। हरमंदिर

को दरबार साहिब भी कहा जाता है। मंदिर में प्रवेश कर प्रदक्षणा करते वक्त ग्रंथ साहिब के गीत चारों ओर सुनाई देते हैं। इस तरह गाकर सुनानेवालों को ग्रंथी या रागी कहते हैं। चार जगहों पर बैठकर वे गुरुग्रंथ का पारायण करते हैं। इस ग्रंथ में 3,500 गीत हैं। ये केवल सिख गुरुओं द्वारा रचे गए ही नहीं है, कबीर, रामानंद, नामदेव जैसे महात्माओं व महानुभावों द्वारा रची गयी रचनाएं भी इसमें हैं। यह एक तरह से गुरुसंहिता है।

हरमंदिर अमृत सरोवर (अमृतसर) नामक निर्मल जलाशय के बीच बना हुआ है। इस सरोवर का निर्माण चौथे गुरु, गुरु रामदास ने सन 1577 में किया था। गुरुनानक द्वारा इस धर्म की स्थापना के सौ वर्ष के बाद पांचवे गुरु अर्जुन देव ने इस सरोवर के बीचों बीच इस मंदिर का निर्माण कर उसमें गुरुग्रंथ साहिब को प्रतिष्ठित
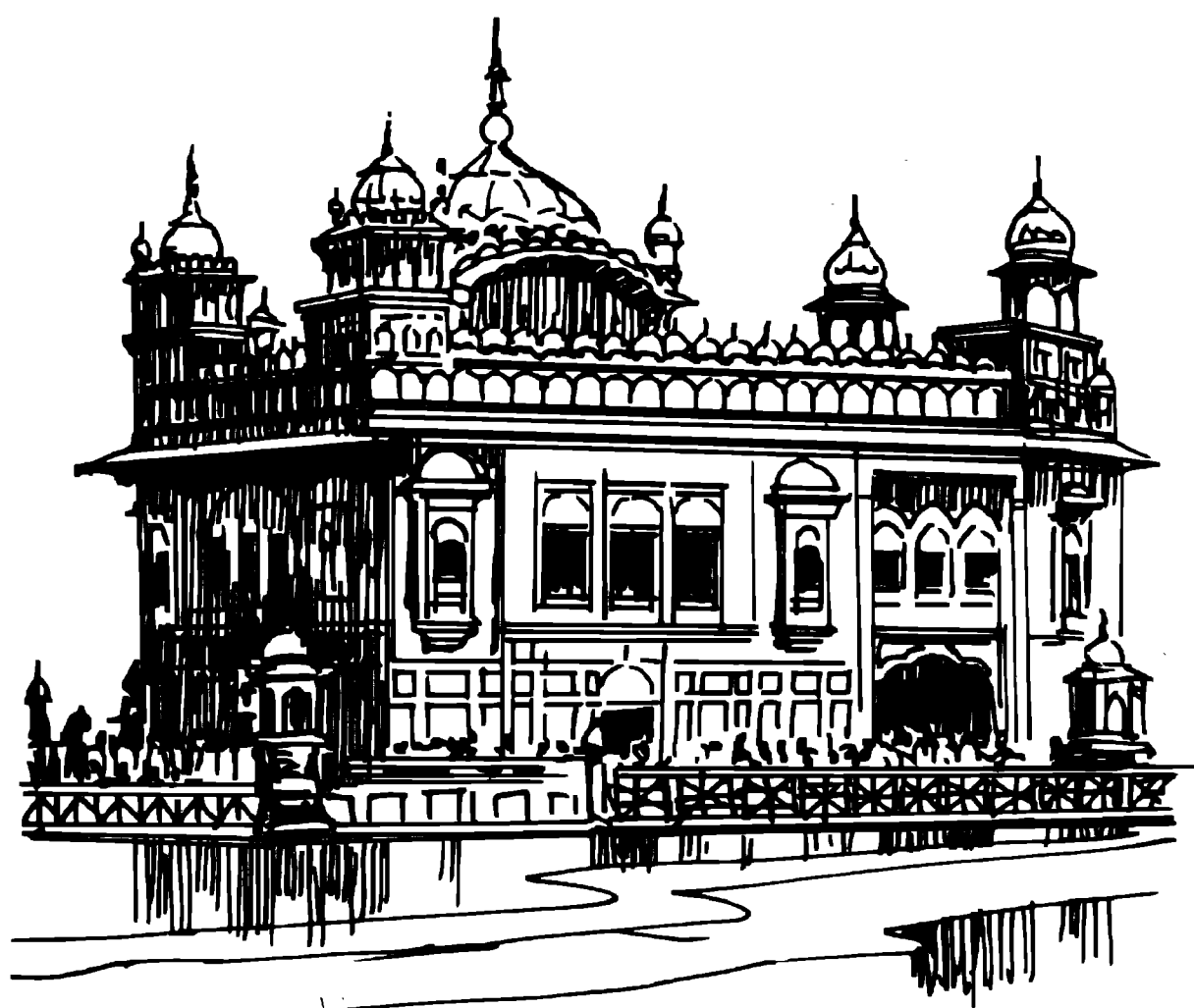
चित्र : अमृतसर का स्वर्णमंदिर

किया। आज जो स्वर्ण मंदिर हमें दिखता है उसे पूरी तरह 1803 में महाराजा रणजीत सिंह ने बनवाया है। सुबह से लेकर रात के दस-ग्यारह बजे तक मंदिर में गुरु संकीर्तन चलता है।

मंदिर देखने आए भक्तों को शुद्ध शाकाहारी भोजन दोनों जून गुरु प्रसाद (लंगर) के रूप में बांटते है। मंदिर में उत्तर दिशा से प्रवेश किया जाता है। पावों में मोजे के साथ भी मंदिर में प्रवेश करना मना है। सिर कपड़े से ढका रहना चाहिए। मंदिर में पैर रखते ही सामने हरमंदिर नजर जाता है। ऊपर के गोपुर में सिख धर्मावलंबियों गुरु और त्यागवीरों से संबंधित आलय देखने को मिलते हैं। इसे देखने पर लगता है कि पूरे देश को देख लिया हो।

हरमंदिर की ऊपरी मंजिल में गुरुग्रंथ साहिब का अखंड पाठ होता है। उनसे ऊपर की मंजिलों में शीशों का मंडप है। गांव से बाहर रामतीर्थ सरोवर है, उसे ही वाल्मीकि आश्रम कहते हैं। कहा जाता है कि सीता देवी ने यहीं पर लवकुश को जन्म दिया था।

स्वर्णमंदिर के बाद आनंदपुर साहिब में एक सुप्रसिद्ध गुरुद्वारा है। सिखों के लिए यह एक पवित्र स्थल है। गुरु तेगबहादुर ने इस क्षेत्र की स्थापना की। कहा जाता है कि सिख धर्म को चारों ओर फैलाने का श्रेय गुरुद्वारों को जाता है।

14. हरिद्वार और ऋषिकेश

कैलासवासी शंकर की जटाओं से उतरकर भारतभूमि पर जहां गंगा ने पैर रखा, वही पुण्यक्षेत्र हरिद्वार है। कहा जाता है कि गंगा श्रीमहाविष्णु के चरणों से निकली है। हरिचरणों तक पहुंचने का द्वार यह है, इसलिए इसे हरिद्वार कहा जाता है। यहीं से हिमालय पर्वत शुरू होते हैं। मोक्ष प्राप्ति के सात पुण्यक्षेत्रों में इसे एक माना जाता है। पुराणों में इसे मायापुरी नाम से भी पुकारा गया है। हरिद्वार के पास बहनेवाली गंगा बहुत ही तेज गति से बहती है। सहज रूप से बहनेवाली गंगा नगर से थोड़ी दूरी पर स्थित "नीलधारा" के नाम से बहती है। जिस नदी में भक्त स्नान करते हैं उसे "हरि की पौड़ी" (हरिपाद या विष्णुपाद) कहते हैं। नित्य हजारों यात्री यहां स्नान करते हैं। नदी के तट पर की दीवारों पर हरि के चरण चिन्ह दिखाई देते हैं।

बारह साल में एक बार यहां कुंभमेला व कुंभोत्सव लगता है। बृहस्पति को 'कुंभ' में प्रवेश के बाद, सूर्य जब 'मेष' में प्रवेश करता है, तब यह मेला लगता है। लाखों यात्री इस उत्सव में भाग लेते हैं। प्रतिदिन गंगा देवी को आरती दी जाती है। गंगा देवी का मंदिर भी इस नदी के तट पर है। पूर्णिमा, अमावस, एकादशी को और ग्रहण-स्नान आदि के लिए हजारों की संख्या में भक्त यहां आते हैं। गंगा तट पर कई मंदिर व आश्रम हैं। मुख्य रूप से सप्तऋषि आश्रम देखने लायक है। तपस्या में मग्न ऋषियों को कष्ट न पहुंचाते हुए

गंगा नदी बहती रहती है।

हरिद्वार के पास, दक्ष प्रजापति ने जहां राज किया था, वहां एक मंदिर है। कहा जाता है कि दक्षयज्ञ यहीं किया गया था। यह भी कहा जाता है कि सती देवी ने यहीं पर अग्निप्रवेश किया था। इस क्षेत्र को कनखल कहते हैं। स्नान करने और पितरों को तर्पण देने ा यह पवित्र स्थान माना जाता है।

ज्यादातर यात्री हरिद्वार में ज्यादा समय तक नहीं रहते। गंगा-स्नान, तर्पण जैसे मुख्य कार्यों को पूरा कर ऋषिकेश चले जाते हैं। ऋषिकेश हरिद्वार से 24 किलोमीटर की दूरी पर है। रास्ते में मनसामंदिर भी देखने लायक मंदिर है। ऋषिकेश में गंगा जल स्वच्छ होता है। यहां का वातावरण भी शांत होता है। शिवालिक पर्वत श्रेणी पर होने के कारण शंकर के केशों से ठंडी हवा बहती हुई मन को आह्लादित करती है। शायद इसीलिए यहां आश्रम ज्यादा नजर आते हैं। ध्यान करने के लिए यह स्थान बढ़िया है। “लक्ष्मणझूला” नामक पुल ऋषिकेश के समीप ही है। राम, लक्ष्मण, भरत आदि के मंदिर भी यहां पर हैं। तिरूपति देवस्थानम ने यहां बालाजी के मंदिर का निर्माण किया और एक अतिथिगृह की भी व्यवस्था की।

15. दिव्यधाम हिमालय

आलयों (मंदिरों) का आलय है हिमालय। सभी आलय हिमालय में ही हैं। सब देवगण पर्वतराज हिमालय में रहते हैं। इसीलिए कालिदास ने हिमालय को "देवात्मा" कहा है। श्रीकृष्ण परमात्मा ने अर्जुन से कहा था कि स्थावरों (पर्वतों) में मैं हिमालय के समान हूं। इस विषय को जानने के लिए हरिद्वार पार करके हिमालय पर्वतों में बर्फ से ढके पर्वत, नदी-स्रोत और प्रकृति में सहज रूप से चलनेवाले देवतागण आदि को प्रत्यक्ष रूप से खुद की आंखों से देखना चाहिए। इसीलिए तो यमुनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ, बद्रीनाथ—इन चारों धामों को देखने का संकल्प यात्री हरिद्वार में ही कर लेते हैं। इन्हीं को "चारधाम" कहा जाता है।

जहां ये चार पुण्यक्षेत्र हैं, उस प्रांत को उत्तराखंड, केदारखंड, देवभूमि आदि कहा जाता है। इस हिमालय की यात्रा शुरू करने से पहले यात्रीगण रामेश्वर में राम द्वारा निर्मित सेतु से थोड़ा बालू लाकर उसे हरिद्वार की गंगा में बहाते हैं। वापस लौटते वक्त थोड़ा-सा गंगाजल ले जाकर उससे रामलिंगेश्वर स्वामी का अभिषेक करते हैं। इस तरह आसेतु हिमालय को आध्यात्मिकता का रूप प्रदान करना भारतीयों के समन्वय भाव को दर्शाता है। यही तीर्थयात्रा का परमार्थ है।

हरिद्वार में किया गया संकल्प ऋषिकेश में कार्यरूप धारण करता है। इस यात्रा की पहली सीढ़ी यमुनोत्री है। यमुनोत्री से गंगोत्री,

गंगोत्री से केदारनाथ और केदारनाथ से बद्रीनाथ जाकर वापस ऋषिकेश आने की परंपरा चली आ रही है। चारों धामों की यात्रा कर लौट आने में करीब 10-15 दिन लगते हैं। यह सब यातायात के साधन तथा वातावरण पर निर्भर करता है।

सप्तऋषि कुंड यमुना का उद्गम स्थल है। सप्तऋषि कुंड पहाड़ पर है। पहाड़ के नीचे यमुनोत्री का मंदिर है। मंदिर में काले रंग में यमुना एवं सफेद रंग में गंगा देवतामूर्ति की तरह हैं। पहाड़ चढ़कर नदी के स्रोत को देखा जा सकता है। अत्रि, भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, कश्यप महर्षि आदि ने यहां तपस्या की थी। यमुनोत्री मंदिर के पास सूर्यकुंड है। यहां पानी उबलता रहता है। यात्रीगण चावल के दाने व आलू कपड़े में बांधकर पानी में थोड़ी देर के लिए रखते हैं तो चावल व सब्जी तैयार हो जाती है। इसके समीप की दिव्य शिला के दर्शन के बाद ही यमुना नदी की पूजा करते हैं।

नदियों के जन्मस्थल जितने पवित्र होते हैं उनके संगम-स्थल भी उतने ही पवित्र समझे जाते हैं। ऐसे नदी संगमों को हिमालयवासी प्रयाग कहते हैं। भगीरथी, अलकनंदा के मिलने के स्थान को देवप्रयाग कहा जाता है। इसके समीप ही रघुनाथ मंदिर है। रघुनाथ की मूर्ति 15 फुट लंबी है। वैष्णवों के आराध्य क्षेत्र माने जाने वाले 108 दिव्य क्षेत्रों में से यह एक है।

इसी तरह अलकनंदा का मंदाकिनी से मिलनेवाला स्थल “रुद्रप्रयाग” कहलाता है। कर्णप्रयाग, नंदप्रयाग, विष्णुप्रयाग भी ऐसे ही नदी संगम स्थल हैं। इन सबको देखते हुए चारों धामों की आराधना की जा सकती है।

यात्री यमुनोत्री के बाद गंगोत्री जाते हैं। भगीरथ के द्वारा गंगाजी

को लाने के लिए जहां तपस्या की गयी थी, वहां भगीरथ शिला देखने को मिलती है। गंगोत्री में देखनेलायक स्थान गोमुख है। गोमुख से ही गंगा का उद्भव हुआ है। गंगोत्री के पास गंगा उत्तर की ओर प्रवाहित होती है। इसीलिए इस क्षेत्र को गंगोत्तरी या गंगोत्री कहते हैं। काशी में भी गंगा उत्तर की दिशा में बहती है। जहां गंगा का आविर्भाव होता है, वहां वह ऊंचा उठकर कलरव करती तेज गति से प्रवाहित होती है। यह निनाद श्राव्य, देखने योग्य और आह्लाददायक लगता है। गंगोत्री मंदिर सुंदर एवं आकर्षक है। गंगोत्री मंदिर अक्षय तृतीया (वैशाख शुद्ध तदिया) के दिन खोलते हैं। दीपावली के दिन बंद करते हैं। सर्दी के मौसम में मंदिर बर्फ से ढका रहता है। असल में गोमुख बर्फ का ढेर मात्र है। यहां से केदारनाथ जाने के रास्ते में कई महर्षियों के तपस्या स्थल, तपोवन, गुप्तकाशी जहां पांडवों से बचने के लिए ईश्वर ने अपने को छिपा लिया था, और पार्वती-परमेश्वर का विवाह-स्थल; त्रियुगी नारायण दिखाई देते हैं। कृत युग में संपन्न उस विवाह के समय प्रज्ज्वलित अग्निहोत्र तीन युगों तक इसी तरह जलता रहे, यह देवताओं की आज्ञा थी। इस अग्निकुंड में लकड़ी के टुकड़े डालकर भस्म को प्रसाद के रूप में ग्रहण करते हैं।

गंगोत्री से बद्रीनाथ जाते वक्त रास्ते में केदारनाथ पड़ता है। बगल में ही मंदाकिनी नदी प्रवाहित होती है। कहा जाता है कि यहां का केदारनाथ मंदिर पांडवों द्वारा निर्मित है। यह बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक है। शंकराचार्य ने इस आलय की मरम्मत करा कर उसे सुंदर रूप दिया है। देश के शिवालयों में इसे मुख्य स्थान प्राप्त है। कहा जाता है कि जगदगुरु ने यहीं पर सिद्धि प्राप्त की थी। कहा जाता है कि भगवान शंकर ने यहीं पर वृषभ रूप में पांडवों को

दर्शन दिए थे। भीम ने उस वृषभ की पूंछ को पकड़ा तो शंकर वहां पिंडरूप में प्रकट हुए। शंकर ने अपने शेष चार रूपों को चार अलग-अलग स्थानों में प्रकट कराया। इन्हीं को पंचकेदार कहा जाता है। बाहुएं तुंगनाथ के रूप में, मुख रुद्रनाथ के रूप में, जटाजूट कल्पेश्वर के रूप में तथा नाभी मध्यमहेश्वर के रूप में प्रतिष्ठित हुए। किंतु पिंड रूप केदारनाथ में ही रह गया। कई यात्री यहां भी जाकर पंचकेदार के दर्शन कर आते हैं।

केदारनाथ से बद्रीनाथ जाते वक्त रास्ते में जोशीमठ पड़ता है। ठंड के मौसम में जब बद्री विशाल बर्फ से ढक जाता है तब वहां के अर्चक जोशीमठ आकर बद्रीनारायण उत्सवमूर्ति की पूजा करते हैं। यहां पर बहुत पुराना वासुदेव मंदिर भी है। शंकराचार्य द्वारा स्थापित चार पीठों में एक जोशीपीठ यहीं पर है। सुना गया है कि यहीं एक कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर आचार्य ने समाधि की स्थिति में सिद्धि प्राप्त की है।

बद्रीनाथ नर-नारायण द्वारा तपस्या किया गया स्थान है। पांच हजार साल पूर्व जब उद्धव यहां आए, तब तक भी वह प्राचीन तीर्थस्थान के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। देश के आठ स्वयं प्रकट हुए क्षेत्रों में यह एक है। श्रीकृष्ण ने इस क्षेत्र को अपना आश्रम बताकर उद्धव को परिचित करवाया तथा यह कहा कि वे वहां जाकर पवित्रता प्राप्त करें। नारद जैसे देवऋषि ने भी इस क्षेत्र का पूजन कर मोक्ष प्राप्त किया। इसलिए इसे नारदक्षेत्र कहा जाता है। कहा जाता है कि शंकराचार्य ही नहीं, रामानुज, मध्याचार्य ने भी इस क्षेत्र के दर्शन किए।

बद्रीनाथ मंदिर में बद्रीनारायण स्वामी की मूर्ति दो फुट ऊंची शालिग्राम की है। स्वामी पद्मासन में ध्यानमुद्रा में बैठे दर्शन देते

हैं। दाईं ओर उद्धव, नरनारायण, नारदमुनि दिखाई देते हैं। बाईं ओर कुबेर रजत-गणपति बैठे हैं। गरुड़ घुटनों पर बैठे रहते हैं। शंकराचार्य के लिए अलग मंदिर है। मंदिर के समीप तप्तकुंड और नारदकुंड नामक दो जलाशय हैं। कहा जाता है कि इनमें नहाना मंगलकारी होता है। ऐसा माना जाता है कि देवतागण भी बदरिकानगर को देखने यहां आते हैं। जहां वे आते हैं, उस स्थान को देवदर्शिनी कहते हैं। मंदिर से थोड़ी दूर पर अलकानंदा तट पर ब्रह्मकपाल नामक नदी है। यहां मृतदेहों को पिंड प्रदान किया जाता है।

बद्रीनाथ का मुख्य मंदिर बद्री विशाल मंदिर ही नहीं, यहां आदि बद्री, बृद्ध बद्री, भविष्य बद्री, योगध्यान बद्री नामक चार मंदिर और हैं। बद्री के आसपास पांच जलप्रपात भी हैं। उनको कूर्मा, प्रह्लाद, उर्वशी, भृगु और इंद्र जल-प्रपात कहा जाता है। यहीं पर शेषनेत्र नामक बड़ा पत्थर भी है। कहा जाता है कि इस पत्थर से आदिशेष सबको देखते रहते हैं।

नरनारायण के पर्वत मुख्य मंदिर के आस-पास हैं। नीलकंठ शिखर बड़ा विचित्र पर्वत-शिखर है। सूर्योदय व सूर्यास्त के समय इसके रंग बदलते हैं।

बद्री दर्शन से चारों धामों की यात्रा पूरी होती है।

16. कैलास शिखर-कैवल्यधाम

पार्वती एवं परमेश्वर के निवास स्थान के रूप में समझा जाने वाला कैलास शिखर (माउंट कैलास) शिवभक्तों हरभक्तों, देशभक्तों आदि सबका पवित्र पुण्यस्थल है। समुद्र तट से 22,028 फुट की ऊंचाई पर स्थित इस बर्फ के पहाड़ का घेरा 50 किलोमीटर है। हिंदुओं को और बौद्धों को भी यह समान रूप से आराध्य है। जैन धर्मावलंबी भी पुण्यक्षेत्र के रूप में इसकी आराधना करते हैं। विश्वविख्यात यह महोन्नत शिखर ऐसा खड़ा है मानो मानव जाति के गौरव का मानदंड हो। यह आलय नहीं महालय है। भक्तों को विश्वास है कि इस पवित्र शिखर के 108 बार परिक्रमा करने से प्राणियों को मुक्ति के साथ ईश्वर की सन्निधि भी प्राप्त होती है। कैलास शिखर से 45 किलोमीटर की दूरी पर समुद्र से 16 हजार फुट ऊंचाई पर सुप्रसिद्ध मानस सरोवर (मानसरोवर) है। सरोवरों का सरोवर होने के कारण इसे मानसरोवर कहना अनुचित न होगा। भले मानव के मन (सज्जन का मानस) की पवित्रता को जांचने के लिए एक मिसाल के रूप में यह दिखता है। इसलिए इसे मानस सरोवर कह सकते हैं। सिर्फ मानस कहना भी काफी है। पानी से दूध को अलग करनेवाले हंस यहां परमहंस की तरह घुमते रहते हैं। मानस का घेरा 80 किलोमीटर है जिसे एक बार घूमकर आने में पांच दिन लगते हैं।

इसी सरोवर के पास वह जलाशय है, जहां रावण ने तपस्या

की थी। यह 'राक्षसतल' कहलाता है। मानस सरोवर को 'रामचरितमानस' कहा जाए तो राक्षसतल को 'रावण दशकंधरम्' कहा जा सकता है। गायत्रीमंत्र के रचियता विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को बताया कि अयोध्या के समीप बहने वाली सरयू नदी तथा कैलास शिखर के बगल में स्थित मानस सरोवर के बीच कोई जल-अनुबंध है। अर्थात पानी का स्रोत एक ही है। भारत के 51 शक्तिपीठों में मानस सरोवर भी एक है। कहा जाता है कि सती का दायां हाथ यहां गिरा था।

कैलास शिखर तथा मान (स) सरोवर दोनों की यात्राएं बहुत मुश्किल से तय की जा सकती हैं। फिर भी जब तक इन दोनों दिव्यक्षेत्रों के दर्शन कर उनका प्रदक्षण कर नमस्कार नहीं करते तब तक श्रद्धाभक्ति वाले यात्रियों को संतोष नहीं मिलता।

दलाईलामा का निवासस्थल धर्मशाला भी हिमाचल प्रदेश में है। वह भी देखने लायक स्थान है। दलाईलामा सामान्यतः मार्च के महीने में तत्वबोध करते हैं। तत्व का सार है, "चुने गए रास्ते कुछ भी हो, पहुंचना तो एक ही जगह है।"

17. आत्मलिंगम और अमरनाथ

पहाड़ी गुफाओं में अपने आप प्रकृतिसिद्ध रूप में बनाए गए मंदिरों के लिए प्रसिद्ध हैं जम्मू व कश्मीर। इससे पहले हमने जम्मू-कश्मीर के वैष्णवदेवी मंदिर के बारे में बात की थी। महालक्ष्मी, महासरस्वती एवं महाकाली एक ही रूप में वैष्णव देवी के रूप में इस गुफा में प्रतिष्ठित हुई हैं। इसी तरह श्रीनगर से 145 किलोमीटर की दूरी पर अमरनाथ नामक शिवक्षेत्र है। वैष्णवदेवी की तरह यह भी गुफा का मंदिर है। समुद्र तट के करीब 14 हजार गज की ऊंचाई पर स्थित इस गुफा में कोई किसी तरह की मूर्ति को प्रतिष्ठित नहीं कर सकता और न मंदिर का निर्माण कर सकता है। सहज रूप में बने गुफा में शिवलिंग जैसा बर्फ का स्तूप मौसम के हिसाब से बढ़ता व घटता रहता है। जैसे-जैसे चांद का कृष्णपक्ष शुरू होता है वैसे-वैसे शिवलिंग घटता जाता है और शुक्ल पक्ष में बढ़ता है। श्रावण पूर्णिमा के दिन लिंग अपनी पूर्ण आकृति में सुंदर नजर आता है। इस दिन शिवलिंग देखने बहुत से यात्री यहां आते हैं। अमरावती नामक नदी में स्नान कर अमरनाथ की हिम-महिमा को देखकर भक्तों को परम आनंद की प्राप्ति होती है। डेढ़ सौ फुट ऊंची तथा 90 फुट लंबी इस गुफा में सबसे अच्छा विशिष्ट दिखने वाला अमरलिंग ही नहीं, विनायक, पार्वती, भैरव भी दिखाई देते हैं। वर्षा की ऋतु में ही स्वामी के दर्शन होते हैं। सालभर में केवल दो महीने ही मंदिर यात्रियों के लिए खुला रहता है। सितंबर से जून तक यह गुफा बर्फ

से ढकी रहती है। मूसलाधार बारिश में क्यों न भीगना पड़े, श्रावण पूर्णिमा का दिन स्वामी की सन्निधि में बिता सकें तो पर्याप्त है, ऐसा यात्री सोचते हैं। हिमलिंग की महिमा ही ऐसी है। अमूमन यात्री श्रावण शुद्ध एकादशी के दिन पहलगांव से रवाना होकर पूर्णिमा के दिन अमरनाथ पहुंचते हैं। आत्मलिंग के दर्शन कर भक्त लोग अपने को धन्य मानते हैं।

इस संदर्भ में एलोरा गुफाओं में शिल्पकला विशारदों के द्वारा पहाड़ों में निर्मित कैलास मंदिर के बारे में दो बातें करनी हैं। संसार में पहाड़ को तराश कर बनाया गया ऐसा विशाल और कलात्मक मंदिर और कोई नहीं है, कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी। अमरेश्वर लिंग प्रकृति माता की अनुपम भेंट है तो एलोरा गुफाओं का कैलास मंदिर शिल्पकलाकारों द्वारा निर्मित शिवस्वरूप है। डेढ़ सौ साल तक, सात पुश्तों के कलाकारों की रात-दिन की मेहनत इस कलाखंड के निर्माण में छिपी हुई है। मंदिर में रामायण, महाभारत के दृश्यों को दर्शाने वाले शिल्प भी हैं। यहां दशावतार देखने लायक है। कैलास पर्वत के नीचे ऐसा दृश्य मिलता है मानो पार्वती और शंकर रावण को कुचल रहे हैं। यह देखने लायक दृश्य है। ऐसा लगता है कि प्रकृति के द्वारा वर्फ की गुफाओं में किया गया काम मानव ने गुफा में बैठकर किया हो।

18. तीर्थंकर और तीर्थ

स्वयं मोक्ष प्राप्त कर दूसरों को मोक्ष दिलाने का सामर्थ्य रखने वाले महापुरुषों को जैन संप्रदाय में तीर्थंकर कहते हैं। जहां वे अवतरित हुए, जहां उन्होंने भ्रमण कर और जहां जनता को उपदेश दिया, उन पुण्यक्षेत्रों को तीर्थ या तीर्थक्षेत्र कहते हैं। पहले तीर्थंकर ऋषभदेव या आदिनाथ का जन्म अयोध्या में हुआ। उन्होंने प्रयाग में कैवल्य ज्ञान (मुक्ति ज्ञान) प्राप्त किया, तथा कैलास शिखर (माउंट कैलास) में निर्वाण की प्राप्ति की। इसीलिए ये तीनों ही जैन धर्मावलंबियों के तीर्थ स्थान हैं।

जैन संप्रदाय में कुल 24 तीर्थंकर हुए हैं। आखिरी तीर्थंकर महावीर ही सुप्रसिद्ध धर्म प्रवक्ता हैं। इनका जन्म बिहार के कुंदनगर गांव में ई.पू. 599 में हुआ। उन्होंने विपुला नामक पर्वत शिखर पर अपना पहला संदेश दिया। ई.पू. 527 में पाटलीपुत्र के पास पावापुर में निर्वाण की प्राप्ति की। पावापुर के जलमंदिर के बीचोंबीच महावीर के चरण-चिन्हों पर एक सुंदर संगमरमर का मंदिर है। इसी परिसर में कई मंदिर और धर्मशालाएं हैं।

जैन तीर्थस्थल चार तरह के होते हैं। महापुरुषों के जन्मस्थान को कल्याण क्षेत्र कहते हैं। जहां सिद्धि प्राप्त हुई हो वे सिद्धक्षेत्र कहलाते हैं। जहां पर अद्‌भुत घटनाएं घटी हों, उन क्षेत्रों को अतिशय क्षेत्र कहते हैं। जहां बड़े-बड़े मंदिर, भवन व गुफाएं निर्मित हैं, उन क्षेत्रों को कलाक्षेत्र कहते हैं। अयोध्या में आदिनाथ का ही नहीं, और

चार तीर्थंकरों का जन्म भी हुआ। बिहार के हजारीबाग जिले में स्थित 'सम्मेद शिखर' पर 20 तीर्थंकरों का सिद्धि क्षेत्र है। यह कइयों के तपोवन के रूप में काम में आया। जैनियों के यात्रास्थानों में इसे विशिष्ट स्थान प्राप्त है। इस शिखर के आसपास और शिखर के ऊपर कई मंदिर हैं। यात्रा थोड़ी कठिन होने पर भी काफी श्रद्धाभक्ति से यात्री सपरिवार इस क्षेत्र के दर्शन करने आते हैं। सोनागिरी या श्रमणाचल नामक दो सिद्धक्षेत्र मध्यप्रदेश में हैं।

सभी क्षेत्रों में सबसे अच्छा और संसारभर में जाना-माना जैन तीर्थराज कहलाने योग्य क्षेत्र श्रवण बेलगोला है। यह कन्नड़ प्रदेश में, मैसूर से 45 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। आदिनाथ (पहले तीर्थंकर) के पुत्र बाहुबलि की मूर्ति को देखने के लिए लोग मुख्य रूप से यहां आते हैं। बाहुबलि को गोमटेश्वर भी कहते हैं। ऋषभदेव (आदिनाथ) के दो पुत्र हैं बाहुबलि एवं भरत। जब ऋषभदेव ने राजगद्दी छोड़ बनवास जाने का निर्णय लिया तब दोनों पुत्रों ने राज्य के लिए संघर्ष किया। बाहुबलि जीत गया। मगर राज्यभोग को स्वेच्छा से त्याग कर भरत को राज्य दे दिया। ऐसे त्यागमूर्ति हैं बाहुबलि। इस त्यागमूर्ति की मूर्ति को 58 फुट ऊंची एक ही शिला में निर्मित कर यहां प्रतिष्ठित किया गया है। यह शिलामूर्ति 24 किलोमीटर की दूरी से ही दिखती है। यह मूर्ति इंद्रगिरी या विंध्यागिरि नामक पर्वत पर स्थित है। कहा जाता है कि संसार में कहीं भी इतनी बड़ी मूर्ति नहीं है।

बारह साल में एक बार इस मूर्ति का दूध-पानी, गन्ने का रास, कुमकुम, पुष्प, चंदन तथा कई और सुगंधित द्रव्यों से और सोने के सिक्कों से महामस्तकाभिषेक (मूर्ति के सिर पर इन पदार्थों को डाल कर नहाने को महामस्तकाभिषेक कहते हैं) किया जाता है। इस

महोत्सव को देखने भारत के कोने-कोने से ही नहीं विदेशों से भी यात्री यहां आते हैं और सबके लिए सभी सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती हैं। यह एक महायज्ञ है। कहा जाता है कि ई.पू. तीसरी शताब्दी में चंद्रगुप्त मौर्य ने अपने गुरु भद्रबाहू के साथ इस क्षेत्र के दर्शन किए थे।

मूर्ति के मस्तक (सिर) पर चढ़कर अभिषेक करने के लिए 470 फुट तक फैली 600 सीढ़ियां चढ़नी पड़ती हैं। इस मूर्ति का निर्माण 1800 साल पहले किया गया है। 1993 में महामस्तकाभिषेक किया गया था। फिर 2005 में किए जाने वाले अभिषेक के लिए सभी लोग इंतजार कर रहे हैं।

हिंदुओं के प्रसिद्ध पुण्यक्षेत्र अयोध्या, मथुरा, काशी, हस्तिनापुर कैलास शिखर, प्रयाग आदि जैन धर्मावलंबियों के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण क्षेत्र तथा सिद्धक्षेत्र होना उनकी विशेषता है। कर्नाटक में धर्मस्थल नामक पुण्यक्षेत्र माध्व तथा जैनियों के लिए समान रूप से आराध्य स्थल है। इस मंदिर में पुजारी मध्व है तथा मध्व संप्रदाय के अनुसार ही पूजाएं होती हैं। मगर मंदिर में सभी कार्य जैन धर्मकर्ता ही करते हैं। हाल में ही यहां 12 मीटर ऊंची बाहुबलि की प्रतिमा को स्थापित किया गया है। परस्पर सहयोग से अलग-अलग धर्मावलंबियों का इस तरह मानव सेवा करना बहुत ही सराहनीय है और यह अनुकरण करने योग्य है।

एलोरा की गुफाओं में भी हिंदुओं के मंदिर और जैन तथा बौद्ध कला क्षेत्रों का एक साथ होना विशेष बात है। सारनाथ बौद्धों के लिए जितना प्रमुख स्थल है जैनियों के लिए भी उतना ही प्रमुख स्थल है। प्रथम तीर्थंकरों का जन्मस्थान (अयोध्या), कैवल्य ज्ञान प्राप्तिस्थान (प्रयाग), निर्वाण (सिद्धि) स्थल कैलास शिखर (माउंट

कैलास) तीनों का हिंदुओं का आराध्य क्षेत्र होना विशेष महत्व रखता है। खजुराहो में भी पश्चिम की ओर सभी हिंदुओं के मंदिर तथा पूर्वी दिशा में जैन तीर्थ नजर आते हैं।

खजुराहो के तीन जैन मंदिरों में पार्श्वनाथ मंदिर (10वीं शताब्दी का) सबसे बड़ा तथा शानदार है। इस आलय की बड़ी विशेषता यह है कि इसमें वैष्णवों के आराध्य देवताओं के शिल्प मंदिर की दीवारों पर गढ़े हैं। वैसे यह पहले तीर्थंकर आदिनाथ के लिए बनाया गया मंदिर है। मगर 1860 में पार्श्वनाथ की प्रतिमा गर्भगृह में रखवाई गयी है। वैसे ही शांतिनाथ के मंदिर में आदिनाथ की मूर्ति भी देखने को मिलती है।

इन जैन मंदिरों में उत्तर की ओर ब्रह्मगुडी (ब्रह्म का आलय) और वामनालय (10वीं और 11वीं शताब्दी के) भी हैं। इन सबसे जैन और बौद्धों का हिंदू धर्म से उस समय से ही समरस भाव नजर आता है।

जैन गुफा मंदिरों में बताने लायक स्थान है पटना के पास स्थित राजगीर (राजगृह) के सोनभद्र गुफा-आलय। ये दो हजार साल पुराने हैं। इनके अलावा विपुला, रत्न, उदय, स्वर्ण, वैभव नामक पांच पवित्र शिलाएं भी काफी प्राचीन हैं। इनमें बहुत कीमती चीजें हैं। यात्री इस तीर्थ से अपना ज्ञान बढ़ाते हैं और उन्हें यह तीर्थ मोह लेता है।

उदयगिरी में राणीगुफा, राजस्थान (चित्तौड़) में कीर्तिस्तंभ, आबू शिखर में जैन मंदिर काफी प्रसिद्ध स्थल हैं। बीकानेर में सरस्वती की मूर्ति काफी सुंदर है। दिल्ली के नेशनल म्यूजियम में प्रवेश करते ही यह मूर्ति मृदु मुसकान से स्वागत करती है।

19. बौद्ध पुण्यक्षेत्र

जैन तीर्थंकरों में प्रज्ञावान और आखिरी तीर्थंकर वर्धमान महावीर (ई. पू. 599-557) और बौद्ध धर्म के प्रवक्ता गौतम बुद्ध, दोनों का समकालीन होना भारतीयों के आध्यात्मिक इतिहास में उल्लेखनीय घटना है। तीर्थंकरों द्वारा प्राप्त आत्मज्ञान को धर्म के द्वारा संघ सम्मति से आगे बढ़ाने वाले बोधिसत्व के तथागत तत्वचिंतन को हिंदुओं ने स्वीकार किया तथा दशावतारों में बुद्ध भगवान को शामिल कर उससे भी संतोषजनक कार्य किया।

काशी के समीप स्थित सारनाथ में बुद्ध भगवान ने अपना पहला संदेश दिया। गया के बोधिवृक्ष ने 'धर्म पाद' के प्रस्तावना का श्लोक सुनाया। ये दोंनो क्षेत्र हिंदुओं के लिए परमपवित्र तीर्थ स्थल हैं। इन दोनों के बारे में हमने पहले ही चर्चा की है। आज बौद्ध धर्म अपने देश में ही नहीं, विदेशों में भी सबको सद्बुद्धि प्रसादित कर रहा है। भारतवर्ष के स्वतंत्र होते ही सारनाथ का अशोक चक्र तथा चार सिंह राष्ट्र चिन्ह बन गए। सांची में भी ऐसा ही एक स्तूप देखने को मिलता है। इतना ही नहीं ई.पू. तीसरी शताब्दी से 13वीं शताब्दी तक के बौद्ध शिल्प, स्मृति चिह्न यहां देखने को मिलते हैं। अशोक चक्रवर्ती द्वारा स्थापित इस महास्तूप में चारों ओर चार तोरण द्वार हैं। हर द्वार पर ध्यान मुद्रा में बैठे बुद्ध की मूर्ति प्रतिष्ठित है। सांची के बुद्ध भगवान के जीवन से प्रत्यक्ष संबंध न होने पर भी यहां शिल्प सौंदर्य, भक्ति तात्पर्य संसार में कहीं और नहीं

नजर आता।

मुंबई से 40 किलोमीटर की दूरी पर 109 बौद्ध गुफाएं हैं। उनमें सबसे आकर्षक चैतन्य मंदिर (संख्या : 3) में 21 फुट लंबी दो बुद्ध मूर्तियां हैं। एक गुफा से समुद्र भी साफ नजर आता है। एलिफेंटा आए भक्तगण इन गुफाओं के दर्शन कर सकते हैं।

नासिक से थोड़ी दूर पर हीनयान बौद्धों द्वारा निर्मित आलय, गुफाएं और मूर्तियां है। इनको पांडव की गुफाएं कहा जाता है। ये करीब दो हजार वर्ष पूर्व निर्मित हैं। इनको देखने से अजंता की गुफाओं की याद आती है। बौद्ध धर्म से संबंधित 24 गुफाओं में से 3, 8, 15 संख्या की गुफाएं देखने लायक गुफाएं हैं। औरंगाबाद की गुफाएं भी ज्यादा संख्या में बौद्ध धर्म से संबंधित ही हैं।

अजंता का सारा अद्भुत शिल्प सौंदर्य बौद्ध गुफाओं से संबंधित ही है। यहां की सारी 30 गुफाएं ई.पू. 200 से 650 तक निर्मित कलाखंड हैं। इनमें थोड़े महायान से तथा थोड़े हीनयान से संबंधित हैं। इतना सुंदर शिल्प चातुर्य ई.पू. 1819 तक अनभिज्ञ था। जब अंग्रेज शिकार के लिए इस प्रांत में आकर यहां विश्राम कर रहे थे तब अचानक उनकी नजर इन गुफाओं पर पड़ी। उसके बाद वे सब लोगों की नजरों में आए। आंध्र प्रदेश के अमरावती नामक शिवक्षेत्र में भी ऐसी कुछ बौद्ध गुफाएं हैं। यहां एक बड़ा बौद्ध स्तूप भी है। इसे देखने के लिए विदेशों से भी बौद्ध धर्मावलंबी यहां आते हैं। कहा जाता है कि जिन शिल्पकारों ने अजंता गुफाओं का निर्माण किया उन्होंने ही इनका भी निर्माण किया है। इतने वर्ष पूर्व निर्मित इन रंगीन चित्रों का आज भी चमकते नजर आना आश्चर्यजनक लगता है। ऐसे कलाकार कितने रससिद्ध रहे होंगे कहा नहीं जा सकता।

एलोरा में भी 12 बौद्ध गुफाएं हैं। और 17 गुफाएं हिंदुओं से संबंधित हैं। यहां जैनियों की भी 5 गुफाएं हैं। सभी बौद्ध गुफाएं करीब-करीब विहार स्थल हैं। चैत्यमंदिर एक ही है। अलग-अलग आकारों में भावमुद्राओं में बुद्ध की मूर्तियां इन गुफाओं में देखने को मिलती हैं। एक गुफा तो बहुत ही विशाल है। यह कोई सभा-मंडप या भोजनशाला लगता है।

इन गुफाओं के समीप द्वादश ज्योतिर्लिंगों में एक घश्मेश्वरालय है। विविध धर्मों के सहजीवन के लिए यह आलय एक उदाहरण प्रस्तुत करता है।

बौद्ध पुण्यक्षेत्रों में नालंदा विश्वविद्यालय को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। पांचवीं शताब्दी में इतना शानदार विद्या संस्थान संसार में कोई और नहीं रहा होगा। यह सब बौद्ध पंडितों का तपःपरिपाक है। आज केवल खंडहर ही है। बिहार राज्य में होने के कारण उस समय यह पुण्यभूमि महान मेधा संपन्न व्यक्तियों के लिए विहारभूमि बना। करोड़ों पांडुलिपियों के संग्रह का एक शानदार ग्रंथालय यहां था। केवल बौद्ध साहित्य ही नहीं, वेदांत, व्याकरण, तर्क, आयुर्वेद जैसे अनेक शास्त्र इस विश्वविद्यालय में पढ़ाए जाते थे। बुद्ध भगवान तथा भगवान महावीर ने इस संस्था में आकर उसे पावन किया। इतना महत्तर स्थल इस शताब्दी के आरंभ तक अपरिचित जैसा ही पड़ा रहा, यह एक विषाद का विषय है। 1916 में आरंभ की गई खुदाई से यह विद्या वैभववाला शिक्षा स्थान संसार के सामने आया। ऐसे और कितने केंद्र भूगर्भ में छिपे हुए हैं, भविष्य ही बता सकता है।

जैनों के आराध्य स्थल राजगीर में सप्तपर्णि गुफा में बौद्ध धर्म का सम्मेलन हुआ। वह बुद्ध निर्वाण के बाद हुआ। बुद्ध भगवान

के वचनामृत को लिपिबद्ध करने का कार्य तभी शुरू हुआ। गृहकूट पर्वत में गिद्ध और बाज घूमा करते थे। वहां बुद्ध भगवान ने तत्वबोध किया। वेणुवन भी तथागत का तपोवन बन गया। जापान देशवासियों ने यहां विश्व शांति स्तूप मंदिर का निर्माण कराया।

बुद्ध भगवान का परिनिर्वाण ई. पू. 383 में हुआ। उन्होंने अंतिम अनुग्रह भाषण वैशाली में दिया। इसीलिए लुम्बिनी, बुद्ध गया और सारनाथ को प्राप्त प्रशस्ति वैशाली को भी मिली है। बौद्ध पुण्यक्षेत्रों ने भारत में ही नहीं विदेशों में भी प्रशस्ति व प्रसिद्धि प्राप्त की है।

20. प्रार्थना मंदिर

आध्यात्मिक चिंतन के लिए मंदिरों की आवश्यकता नहीं है। लोक कल्याण के लिए लोकेश्वर को किसी भी रूप में मन से ध्यान (प्रार्थना) कर उस परमात्मा को संसार के हर एक कण में देख सकें तो वही सच्ची आराधना होगी। ईसाई चर्च में बैठकर यीशू की प्रार्थना करें, मुसलमान चंद्रतारों का स्मरण कर अल्लाह को आत्म-निवेदन करने के लिए नियम एवं निष्ठा से नमाज पढ़ें, किसी धर्म का पालन करें, भगवान को माने या न माने, कम से कम अपने ऊपर विश्वास रखकर सामनेवाले को प्रेम से देखकर प्रेमस्वरूप परमात्मा की सेवा के रूप में ध्यान करने से वह पुण्य कार्य ही कहलाएगा। ऐसा अच्छा कार्य जहां होगा वह पुण्यक्षेत्र ही होगा।

इस दृष्टि से देखा जाए तो अपने देश के ईसाई व मुसलमानों के प्रार्थना मंदिर शानदार प्रार्थना केंद्र कहे जा सकते हैं। जिसे संसार सपनों में भी सोच नहीं सकता ऐसे पुरुषार्थ हृदयपूर्वक किए गए प्रार्थना से प्राप्त हो सकती है, यह बात एक ईश्वरभक्त अंग्रेज ने कही है। हिंदुओं के लिए *गीता* जितना पवित्र ग्रंथ है, सिखों के लिए *गुरुग्रंथ साहिब*, ईसाइयों के लिए *बाइबिल* तथा मुसलमानों के लिए *कुरान* उतने ही पवित्र ग्रंथ हैं। गुरु तथा अपने धर्म प्रवक्ता को साक्षात देवता का रूप मानकर उनकी सेवा करनेवाले गुरुद्वारा, चर्च, मस्जिद पवित्र आलय ही कहलाएंगे। उनमें भाव प्रधान होता है। दूसरों की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझकर परोपकार करना ही सच्ची

धर्मनिष्ठा है।

ऐसे प्रार्थना मंदिरों में गोवा का सेंट कोथेड्रेल चर्च एक है। संसारभर के सभी चर्च में से यह बड़ा है। ई. सन् 1553 में निर्मित इस चर्च में पांच घंटियां हैं। कहा जाता है कि इस चर्च की सलीब पर 1619 में ईसा मसीह दिखाई दिए थे। वहां महामानवतावादी सेंट फ्रांसिस जेवियर की भौतिक काया आज भी सुरक्षित रखी गई है। वे महापुरुष 1540 में गोवा आए थे। 1552 में चीन में इनकी मृत्यु हुई। भारतीय साहित्य में यह युग भक्ति युग कहलाता है। किसी भी देश से किसी भी धर्म के लोग यहां आए, हमारा देश सबका स्वागत करता है। पुर्तगाल के नाविक वास्को-दि-गामा समुद्र मार्ग

से हमारे देश की खोज में आए तो उनके नाम हमारे देश में एक नगर का निर्माण किया गया।

आबू शिखर पर दिल्वारा के पास संगमरमर के पत्थर से निर्मित जैन मंदिर, दिल्ली में हाल में कमल के आकार में निर्मित प्रार्थनालय, जो बहाइयों का है, बहुत सुंदर है। सभी प्रार्थना के आलय अपने जीवन में घुल-मिल गए हैं। हमारे देश में ऐसा कोई नगर नहीं है जहां गिरजाघर या मस्जिद न हो। ऐसा कोई गांव नहीं है जहा रामालय या शिवालय न हो। सबको समदृष्टि से देखते हुए सब कुछ उसी की दिव्यकला है—ऐसा सोचती है भारतभूमि। इसीलिए इसे कर्मभूमि पुण्यभूमि कहते हैं। काशी विश्वनाथ मंदिर के बगल में स्थित औरंगजेब की मस्जिद भी हमारे लिए आदरणीय है। तमिलनाडु में समुद्र तट पर स्थित नागर मीर साहब दरगाह भी काफी प्रसिद्ध पुण्यक्षेत्र है। बृहदीश्वरालय मंदिर जिस जिले में स्थित है, उसी तंजावूर जिले में ही यह दरगाह भी है। हमारे लिए दुर्गा माता जितनी आराध्य देवी है, दरगाह भी उतना ही आराध्य देवालय है।

इसी तरह तंजावूर से 100 किलोमीटर दूर स्थित वेलांकण्णि नामक चर्च में लाखों हिंदू आते हैं। आरोग्यमाता के नाम से प्रसिद्ध यह क्षेत्र रोमन कैथलिक के लिए ही नहीं तंजावूर निवासियों के लिए भी आराध्यक्षेत्र है।

मुंबई का हाजीअल्ली दरगाह भी सभी धर्मों के लोगों का पुण्यक्षेत्र है। 'सबका मालिक एक है' इस बात को संसार में व्याप्त करने वाले 'शिरिडी के साईं बाबा' के भक्त सभी धर्मों में देखने को मिलते हैं। इसी तरह आंध्र प्रदेश-कर्नाटक की सीमा में स्थित अभिनव नालंदा की तरह विख्यात 'प्रशांतिनिलयम' सर्व धर्मसमन्वय का प्रचार करते हुए मानवता के धर्म को परिव्याप्त कर रहा है। सत्य, धर्म, प्रेम,

शांति, अहिंसा ये सब मानव जाति को चलाने वाले पांच वटवृक्ष हैं, ऐसा मानकर अपने पास पंचवटी की स्थापना करने वाले सत्य साईं बाबा संसार के बड़े बड़े लोगों को अपने पास बुला रहे हैं।

महात्मा गांधी के आश्रम-भजनावली में सभी धर्म के लोगों द्वारा कीर्तन करने वाले भक्तिगीत, श्लोक, मंत्र संग्रहीत किए गए हैं। ईश्वर अल्लाह तेरे नाम यह मंत्र इस शताब्दी का दिव्यगान बन गया है। पिछले युग में जैसे वसिष्ट महामुनि के ब्रह्मतेज को देखकर विश्वमित्र निर्वीर्ण (कमजोर) होकर "दिग्बलम् क्षत्रियबलम् ब्रह्म तेजो वलम्" अर्थात स्थानिक बल और क्षत्रिय बल में कोई बल नहीं होते असली बल (शक्ति) तो ब्रह्मतेज (आत्मिक बल) ही होता है। कहा, वैसे
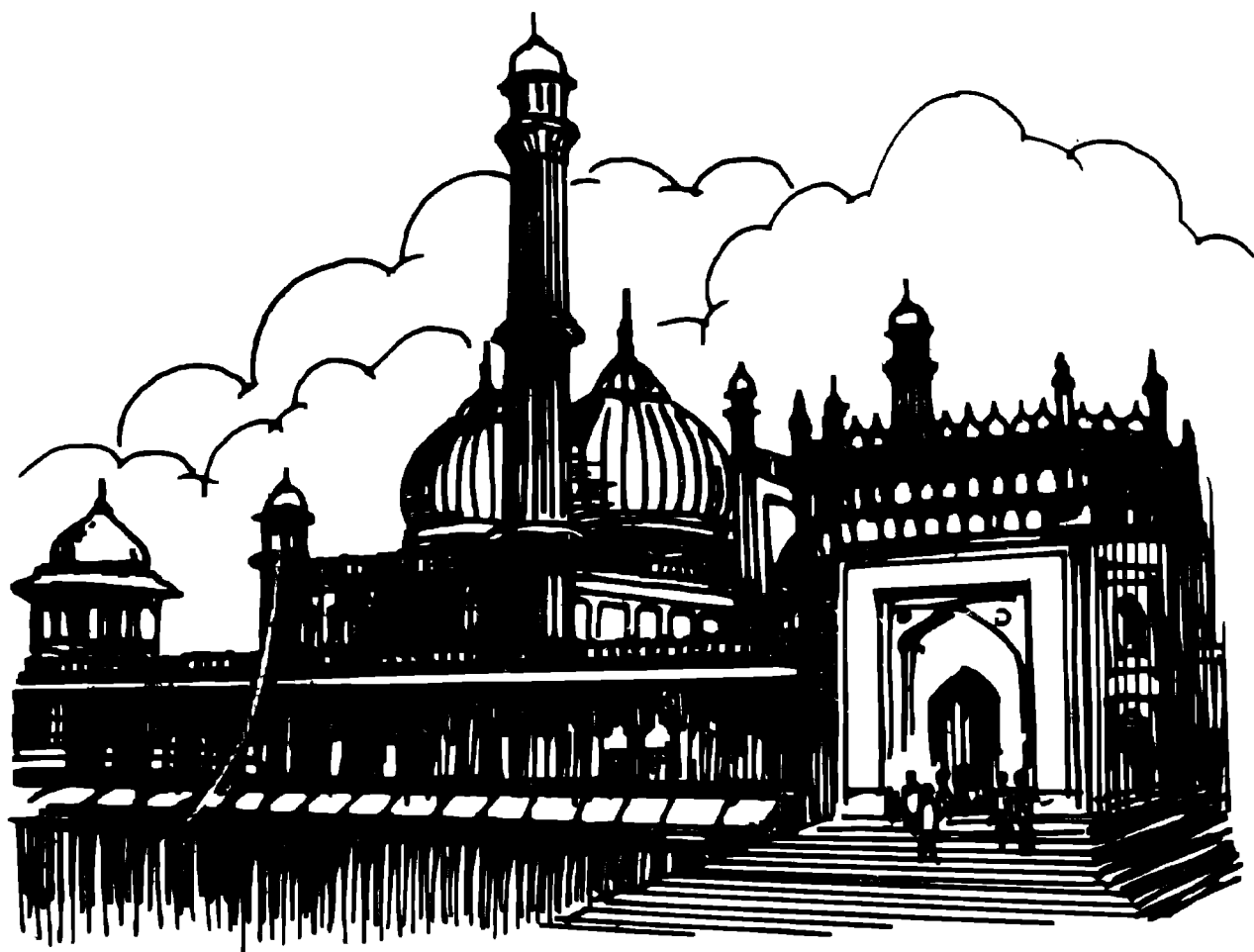
ही इस शताब्दी के युग पुरुष महात्मा गांधी ने, जो अर्धनग्न फकीर की तरह केवल एक कपड़ा पहना करते थे अपने आत्मबल से अस्त्र बल का सामना कर सत्यधर्म की रक्षा की। सत्याग्रह से स्वतंत्रता प्राप्त कराई।

हमें स्वतंत्रता प्राप्त हुए आधी शताब्दी बीत गई। अपने देश, संस्कृति, साहित्य, आध्यात्मिक दर्शन को समझने की कोशिश कम से कम अब तो हमें अवश्य करनी चाहिए। हमारे धर्म अलग-अलग क्यों न हो, मानव सब एक हैं, हमें इस मानव मंत्र का जप करना चाहिए। तभी हमारे पुण्यक्षेत्र पुण्यतीर्थ बन सकते हैं।

●●●

इंडिया इन्टरनेशनल प्रैस, ए-12/1 नारायणा इन्डस्ट्रीयल एरिया फेस-I, द्वारा मुद्रित